योगविद्या

वर्ष 15 अंक 5
मई 2026

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

© Bihar School of Yoga 2026

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं प्लेट : श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का प्रथम मुंगेर पदार्पण दिवस, मई 2026

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

विनम्रता

विनम्रता शांति की जननी है। विनम्र मानवों के संसर्ग से अपार शांति का अनुभव होता है। नम्र बनो और शांति पाओ। घास के तिनके से भी अधिक नम्र बनो। विनम्रता से कोई नुकसान नहीं, बल्कि फायदा ही फायदा है। नम्रता में गर्व नहीं, गौरव है। नम्रता को जीवन का आदर्श बनाओ। गर्दभ के आगे भी झुको, उसमें शरमाने की कोई बात नहीं। सभी को भगवान् मानने से सहिष्णुता बढ़ेगी; निन्दा और आलोचना को तुम पसन्द करने लगोगे। इस स्तर पर पहुँचने के बाद किसी को मुंहतोड़ जबाव देने की आदत चली जायेगी। धैर्य का विकास होगा तथा वास्तविकता को तुम यथावत् समझ पाओगे।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित

स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 15 अंक 5 मई 2026
(प्रकाशन का 64वाँ वर्ष)

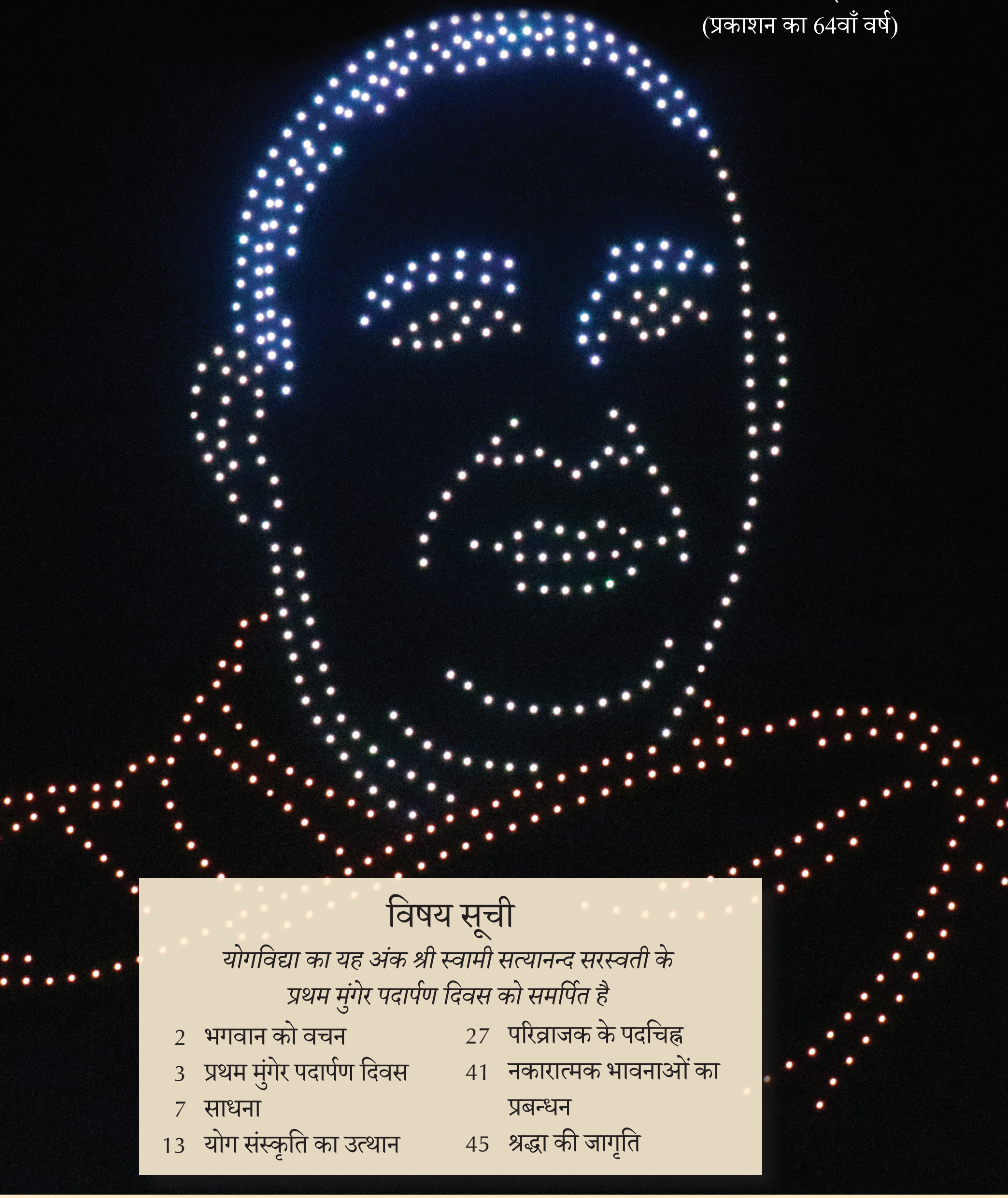

विषय सूची

योगविद्या का यह अंक श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के प्रथम मुंगेर पदार्पण दिवस को समर्पित है

2 भगवान को वचन
3 प्रथम मुंगेर पदार्पण दिवस
7 साधना
13 योग संस्कृति का उत्थान
27 परिव्राजक के पदचिह्न
41 नकारात्मक भावनाओं का प्रबन्धन
45 श्रद्धा की जागृति

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

भगवान को वचन

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

ॐ नमो नारायणाय
भगवान मृत्युंजय!
मैंने तुम्हारी आराधना की है
काल भैरव के रूप में एक तत्त्व से
कामाख्या में पाँचों तत्त्वों से
विष्णु के रूप में पत्र, पुष्प, फल और दूध के साथ।
अनेक रूपों में, अनेक विधियों से,
और अनेक स्थानों पर।
तुमने जिस रूप में दर्शन दिया, उसी रूप में
मैंने तुम्हारा पूजन किया।
और अब, मैं तुम्हारी आराधना करूँगा,
श्मशान भूमि में, हर साँस में,
यह मेरा वचन है।

परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
के मुंगेर पदार्पण का प्रथम महोत्सव
तथा
श्रीनिवास कल्याणोत्सवम्

पादुका दर्शन, संन्यासपीठ
6 मई 2026
प्रातः 11 से दोपहर 1 बजे

योग नगरी मुंगेर, बिहार
के नागरिकों द्वारा आयोजित
तथा तिरुमाला तिरुपति देवस्थानम्
द्वारा संचालित

आत्मस्वरूप
हरि: ॐ

श्रद्धा, आनंद और कृतज्ञता के भाव सहित, योग नगरी मुंगेर के नागरिक, विश्व योग पीठ तथा संन्यास पीठ के साथ मिलकर आपका परमहंस स्वामी सत्यानंद सरस्वती जी के **प्रथम मुंगेर पदार्पण** के ऐतिहासिक और पवित्र उत्सव में हार्दिक स्वागत करते हैं।

6 मई 1957 को श्री स्वामीजी पहली बार एक परिव्राजक संन्यासी के रूप में मुंगेर आए थे। उत्तरवाहिनी माँ गंगा ने उन्हें यहाँ आने के लिए प्रेरित किया। गहरे आध्यात्मिक अनुभवों के माध्यम से श्री स्वामीजी को ज्ञात हुआ कि मुंगेर आधुनिक वैश्विक योग आंदोलन का मुख्य केंद्र बनेगा। मुंगेर में ही श्री स्वामीजी ने योग का बीजारोपण किया, उसे पोषित एवं विकसित किया। 1963 में उन्होंने यहीं बिहार योग विद्यालय की स्थापना की और एक साथ अनेक दिव्य उद्देश्यों को साकार किया –

- स्वामी शिवानंद जी की शिक्षाओं को समर्पित आश्रम;
- ऐसा गुरुकुल जहाँ के आश्रम जीवन, सेवा और शिक्षण के वातावरण में रहते हुए व्यक्ति बेहतर बन सके और स्वास्थ्य, सुख-शांति एवं सामंजस्य पा सके;
- विश्व योगपीठ, जहाँ योग का शिक्षण और अभ्यास होता है तथा अपने जीवन में आत्मसात् और अभिव्यक्त किया जाता है।

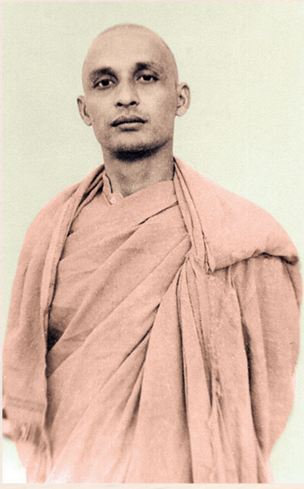

श्री स्वामीजी के योग संकल्प के कारण ही 2005 में भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जी ने मुंगेर को योग नगरी घोषित किया था।

अब 2026 में, उनहत्तर सालों बाद पहली बार योग नगरी मुंगेर के योगानुरागी लोग मिलकर इस ऐतिहासिक अवसर को मनायेंगे। **6 मई 2026** को **पादुका दर्शन परिसर** में माँ गंगा के पावन तट पर मुंगेर पदार्पण दिवस का यह प्रथम कार्यक्रम बड़े धूमधाम से आयोजित किया जाएगा।

श्रीनिवास कल्याणोत्सवम्

इस पवित्र दिन का महाप्रसाद – इस उत्सव का विशेष आशीर्वाद है भक्तों के लिए भगवान श्री तिरुपति बालाजी का दिव्य दर्शन! इस शुभ अवसर पर भक्त –

- भगवान श्री तिरुपति बालाजी की उत्सव मूर्ति का दर्शन कर सकेंगे,
- श्रीनिवास कल्याणोत्सवम् देखेंगे,
- भक्ति, पवित्रता और दिव्य कृपा से भरे वातावरण में शामिल हो सकेंगे।

इस ऐतिहासिक अवसर पर भगवान तिरुपति बालाजी की उत्सव मूर्ति 6 मई 2026 को योग नगरी मुंगेर में उपस्थित होगी। तिरुमाला तिरुपति देवस्थानम् से आए विद्वान् पंडित एवं ब्राह्मण श्रीनिवास कल्याणोत्सवम् के समस्त कर्मकाण्ड, पूजा, भगवत्सेवा और अन्य धार्मिक कृत्य सम्पन्न करेंगे।

दर्शन का समय – पादुका दर्शन आश्रम के द्वार दर्शन के लिए प्रात: 11 बजे से दोपहर 1 बजे तक खुलेंगे। सभी भक्तों से विनम्र निवेदन है कि परिसर में वे **सद्विचार, सद्व्यवहार एवं सत्कर्म** की मर्यादा का पालन करें, क्योंकि आप सृष्टिपति भगवान श्री तिरुपति बालाजी की साक्षात् दिव्य उपस्थिति में होंगे।

आशीर्वाद का ऐतिहासिक दिवस – गुरुदेव श्री स्वामीजी की कृपा से यह दिन बिहार और मुंगेर के लिए ऐतिहासिक बन गया है। यह शुभ अवसर एक परमपावन दिन के रूप में हमेशा याद रखा जाएगा – **जब भगवान श्री तिरुपति बालाजी बिहार आए और मुंगेर को अपने दिव्य सान्निध्य से धन्य किया।**

कृपया ध्यान दें – दोपहर 4 से 6 बजे तक भगवान श्री तिरुपति बालाजी का दर्शन पोलो मैदान में होगा।

आइए, हम सब भक्ति, कृतज्ञता और खुशी के साथ एकत्र हों,

हम सब श्री स्वामीजी के प्रथम मुंगेर पदार्पण का सम्मान करें,

हम सब गुरुदेव, माँ गंगा और भगवान श्री तिरुपति बालाजी का आशीर्वाद प्राप्त करें,

हम सब एक ऐसे दिन का हिस्सा बनें जो इतिहास, भक्ति, योग, कृपा और दिव्य नियति का संगम स्थान है।

ईश्वर करे कि यह पवित्र दिन सबके हृदय में भक्ति, मन में शांति और जीवन में कृपा लाए।

स्वागताभिलाषी,

स्वामी कैवल्यानन्द सरस्वती,
गौरव शर्मा, सत्येश शर्मा,
तथा योग नगरी मुंगेर के नागरिक

कृपया ध्यान दें –

- श्री तिरुपति बालाजी की मूल मूर्ति तिरुमाला में स्थापित है। उनकी उत्सव मूर्ति उनकी कृपा के संचार का माध्यम है।
- पादुका दर्शन में प्रवेश के लिए पारम्परिक भारतीय परिधान अनिवार्य होगा (पुरुषों के लिए धोती/कुर्ता-पायजामा, महिलाओं के लिए साड़ी/सलवार-कमीज़)

BIHAR YOGA

TIRUMALA TIRUPATI DEVASTHANAMS

SANNYASA PEETH

लोक-कल्याणार्थ आयोजित

साधना

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

साधना शब्द की उत्पत्ति 'साध्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'प्रयत्न करना', 'किसी विशेष सिद्धि की प्राप्ति के लिए प्रयास करना'। जो प्रयत्न करता है, उसे साधक कहते हैं। यदि अभीष्ट फल-सिद्धि की प्राप्ति हुई, तो उसे सिद्ध कहते हैं। जिसे ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान है, वह पूर्ण सिद्ध है। साधना के बिना आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वर-दर्शन सम्भव नहीं है। कोई भी आध्यात्मिक प्रयत्न साधना है। साधना तथा अभ्यास पर्यायवाची शब्द हैं।

यदि आप शीघ्र उन्नति करना चाहते हैं, तो आपको ठीक प्रकार की साधना मालूम हो जानी चाहिए। यदि आप आत्मावलम्बी हैं, तो स्वतः ही नित्यप्रति के अभ्यास के लिए साधना को चुन सकते हैं। यदि आपमें आत्मार्पण का भाव है, तो अपने गुरु से अपने लिए उपयुक्त साधना प्राप्त कर लीजिए तथा गम्भीर श्रद्धा के साथ उसका अभ्यास कीजिए।

आप अनावश्यक ही अपना बन्धन दीर्घकाल तक क्यों बनाये रखेंगे? आप अभी ही अपने जन्माधिकार को प्राप्त क्यों नहीं करते? अभी आप अपने बन्धन को क्यों नहीं तोड़ते? विलम्ब का अर्थ है कष्टों की वृद्धि। आप किसी भी क्षण बन्धन को तोड़ सकते हैं। यह आपके सामर्थ्य के दायरे में है। अभी कीजिए। खड़े हो जाइए। कटिबद्ध होइए। उग्र तथा अनवरत साधना कीजिए। मुक्ति प्राप्त कर नित्य सुख का उपभोग कीजिए।

अनुशासन, तप, आत्म-संयम तथा ध्यान के द्वारा निम्न प्रकृति को उच्च प्रकृति का सेवक बना डालिए। यही आपकी मुक्ति का समारम्भ है।

आपके अन्दर का ईश्वरत्व आपके बाहर की सभी वस्तुओं से अधिक शक्तिशाली है, अतः किसी भी वस्तु से भय न कीजिए। अपनी अन्तरात्मा पर ही निर्भर रहिए।

त्याग के बिना आप कदापि सुखी नहीं हो सकते। त्याग के बिना आप कभी विश्राम नहीं कर सकते। अतः सब-कुछ त्याग डालिए। आनन्द पर अपना अधिकार जमाइए। त्याग को ही सर्वश्रेष्ठ मानिए।

अपना सुधार कीजिए। चरित्र निर्माण कीजिए। हृदय को शुद्ध बनाइए। वृत्तियों को शान्त कीजिए। उफनते आवेगों को स्तब्ध कीजिए। बहिर्मुखी

इन्द्रियों को समेट लीजिए। वासनाओं को नष्ट कीजिए। आप गम्भीर ध्यान में महिमामय आत्मा के दर्शन करेंगे।

पूर्ण स्वतन्त्रता तथा निर्वाण-प्राप्ति के पाँच साधन हैं। इनसे ही परम सुख की प्राप्ति होती है। ये हैं – सत्संग, विवेक, वैराग्य, 'मैं कौन हूँ?' का विचार तथा ध्यान। ये ही स्वर्ग हैं। ये ही धर्म हैं। ये ही सर्वोच्च सुख हैं।

पहले भला मनुष्य बनिए। तब इन्द्रियों का दमन कीजिए। फिर निम्न मन को उच्च मन से पराजित कीजिए। तब ईश्वरीय ज्योति का अवतरण होगा।

बिना जल्दीबाजी किये शान्तिपूर्वक, संलग्नतापूर्वक ध्यान का अभ्यास कीजिए। आप शीघ्र ही समाधि प्राप्त कर लेंगे।

आध्यात्मिक जीवन कठिन तथा श्रमयुक्त है, इसके लिए सतत् सावधानी तथा दीर्घ उत्साह की आवश्यकता है। तभी ठोस उन्नति सम्भव है।

आपने स्वयं ही अज्ञानवश बन्दीगृह की दीवारें अपने लिए खड़ी की हैं। आप विवेक तथा 'मैं कौन हूँ?' के विचार द्वारा इन दीवारों को ध्वस्त कर सकते हैं।

कष्ट आदमी को शुद्ध बनाते हैं। वे पाप तथा मल को जला डालते हैं। ईश्वरत्व अधिकाधिक प्रकट होने लगता है। उससे आन्तरिक शक्ति मिलती है, इच्छा-शक्ति विकसित होती तथा तितिक्षा-शक्ति बढ़ती है। अतः कष्ट भी छिपे रूप से वरदान ही हैं।

ध्यान के समय प्रकाश की एक किरण भी आपके मार्ग को आलोकित कर देगी। इससे आपको पर्याप्त उत्साह तथा आन्तरिक बल मिलेगा। इससे आप अधिकाधिक साधना करने के लिए प्रेरित होंगे। ध्यान की गम्भीरता बढ़ने पर, शरीर-चैतन्य से ऊपर उठने पर आप इस प्रकाश-किरण का अनुभव करेंगे।

आत्मा की प्रसुप्त क्षमताओं का प्रस्फुटन ही दिव्य जीवन है। दिव्य जीवन जीने का प्रयास कीजिए। ध्यान, जप, कीर्तन तथा स्वाध्याय के द्वारा दिव्य विचारों को उन्नत कीजिए। शाश्वत जीवन की सरिता में स्नान कीजिए। डुबकी लगाइए, गोता लगाइए, तैरिए, आनन्द लीजिए।

आत्मा-रूपी पुष्प की कली का प्रस्फुटन ही पूजा है। पूजा ही जीवन है। पूजा से ही नित्य जीवन की प्राप्ति होती है। आप युद्ध में लाखों व्यक्तियों को जीत सकते हैं, परन्तु मन पर विजय पाने से ही आप वास्तविक विजेता बन सकेंगे।

जब तक आप इन्द्रियों को नहीं जीत लेते, तब तक आपको तपस्या, दम तथा प्रत्याहार का अभ्यास करते रहना चाहिए।

जब विद्युत् बल्ब कई परतों वाले कपड़े से ढका रहता है, तब उसकी प्रखर रोशनी प्राप्त नहीं होती। एक-एक कर परत हटाते जाइए और रोशनी प्रखरतर होती जायेगी। इसी तरह स्वयं-प्रकाश आत्मा भी पंचकोशों से ढका हुआ है। ध्यान अथवा 'नेति-नेति' के अभ्यास के द्वारा एक-एक आवरण को उतारते जाइए। आत्मा का प्रकाश बढ़ता जायेगा।

शान्तचित्त होकर बैठ जाइए। शरीर तथा मन के ऊपर अपना स्वामित्व स्थापित कीजिए। अपने हृदय के प्रकोष्ठ में गहरा गोता लगाइए तथा गम्भीर मौन-सागर में निमग्न हो जाइए। वहाँ की निःशब्द वाणी को सुनिए।

पहले हृदय को शुद्ध बनाइए, तब योग की सीढ़ी पर साहस तथा अविचल उत्साह के साथ बढ़ते जाइए। शीघ्र ही ऊपर चढ़िए। ऋतम्भरा-प्रज्ञा प्राप्त कर ज्ञान-मन्दिर में प्रवेश कीजिए, वहाँ धर्म-मेघ से अमृत की वर्षा होती है।

ठोस नींव पर आध्यात्मिक जीवन का निर्माण कीजिए। ईश्वर-कृपा तथा चरित्र-बल ही पक्की नींव है। ईश्वर तथा उसके सनातन नियम की शरण में जाइए। इस पृथ्वी तथा स्वर्ग में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो आपके मार्ग में व्यवधान डाले। आत्म-साक्षात्कार में सफलता निश्चित है। आपके लिए विफलता है ही नहीं। आपके मार्ग पर आलोक है। सब-कुछ प्रकाशमय है।

साधना का अर्थ कोई भी आध्यात्मिक अभ्यास है जिससे साधक ईश्वर को प्राप्त कर सके। साधना वह साधन है जिससे जीवन के लक्ष्य को पाया जाये। योग्यता, रुचि तथा उन्नति के स्तर के अनुसार व्यक्ति-व्यक्ति में साधना की भिन्नता होती है। हरेक व्यक्ति को अनुकूल साधना अवश्य ग्रहण कर लेनी चाहिए जिससे परम लक्ष्य की प्राप्ति हो। साध्य वह है जो साधना से प्राप्त किया जाये। यह ईश्वर या आत्मा या पुरुष है।

जो भक्ति-मार्ग का अनुगमन करते हैं, उन्हें जप अथवा भागवत या रामायण का स्वाध्याय करना चाहिए। नवधा-भक्ति – श्रवण, स्मरण, कीर्तन, वन्दन, अर्चन, पाद-सेवन, सख्य, दास्य तथा आत्म-निवेदन के द्वारा भक्त उच्च कोटि की भक्ति को प्राप्त कर सकता है। भक्त को व्रत, अनुष्ठान, प्रार्थना तथा मानसिक पूजा भी करनी चाहिए। उन्हें दूसरों की नारायण-भाव से सेवा करनी चाहिए। भक्तियोगी के लिए यही साधना है।

जो कर्मयोग का अनुगमन करते हैं, उन्हें पीड़ित मानव-जाति तथा समाज की विविध रूप से निष्काम सेवा करनी चाहिए। उन्हें कर्म के फल को ईश्वरार्पित कर देना चाहिए। अपने को ईश्वर के हाथों का निमित्त समझ कर उन्हें कर्ता-भाव का त्याग करना चाहिए। स्वार्थ से मुक्त होकर इन्द्रियों का दमन करना चाहिए। अपने जीवन को मानव-सेवा के लिए पूर्णतः अर्पित कर देना चाहिए। उन्हें यह मानना चाहिए कि सारा जगत् ईश्वर का ही रूप है। इस भाव के साथ सेवा करने पर कालान्तर में चित्त शुद्ध हो जाता है। यही कर्मयोगियों की साधना है। यह स्वतः लक्ष्य नहीं है। बहुत से साधक भ्रमवश ऐसा मानकर उन्नत साधना

का अभ्यास नहीं करते। उन्हें धारणा, ध्यान तथा समाधि का अभ्यास कर परम लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिए।

राजयोगी क्रमशः आठ सोपानों से होकर चढ़ता है। प्रारम्भ में वह यम-नियम का पालन करता है। तब वह आसन स्थिर बनाता है। प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान का अभ्यास कर वह समाधि प्राप्त करता है। संयम के द्वारा उसे विविध सिद्धियाँ मिलती हैं। वह चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध करता है।

जो ज्ञान-मार्ग अथवा वेदान्त का अवलम्बन करते हैं, उन्हें सर्वप्रथम साधन-चतुष्टय – विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत् तथा मुमुक्षुत्व, इनसे युक्त होना चाहिए। तब वे ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाते हैं एवं उनसे श्रुतियों का श्रवण करते हैं। श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के अभ्यास से वे आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करते हैं। तब ज्ञानी आनन्द में कह उठता है, 'आत्मा ही एकमेव है, वह एकमेवाद्वितीयम् है। आत्मा ही एक सत्य है। मैं ब्रह्म हूँ। अहं ब्रह्मास्मि। शिवोऽहम्। सर्वं खल्विदं ब्रह्म।' जीवन्मुक्त व्यक्ति आत्मा को सभी प्राणियों में तथा सभी प्राणियों को आत्मा में देखता है।

हठयोग के साधकों को चाहिए कि वे कुण्डलिनी-शक्ति को जाग्रत करने के लिए प्रयत्नशील बनें। मुद्रा, बन्ध, आसन तथा प्राणायाम के द्वारा मूलाधार-

चक्र में प्रसुप्त कुण्डलिनी-शक्ति को जगाया जाता है। प्राण तथा अपान को संयुक्त कर इस संयुक्त प्रवाह को सुषुम्ना-नाड़ी से ले जाना चाहिए। कुम्भक के द्वारा गरमी बढ़ती है तथा कुण्डलिनी के साथ वायु विभिन्न चक्रों से होते हुए सहस्रार को जाती है। सहस्रार-चक्र में जब कुण्डलिनी भगवान् शिव से मिल जाती है, तब योगी परम शान्ति, सुख तथा अमृतत्व प्राप्त कर लेता है।

जीवन का लक्ष्य भगवत्-साक्षात्कार अथवा आत्म-साक्षात्कार है। यह सभी का लक्ष्य है। इसमें वर्ण, राष्ट्रीयता, शैक्षिक योग्यता, सामाजिक परिस्थिति, जाति, सम्प्रदाय और स्त्री-पुरुष का कोई अपवाद नहीं है। सभी प्राणी चेतन अथवा अचेतन अवस्था में इस लक्ष्य की ओर ही प्रगतिशील हैं। मनुष्य का जीवन आध्यात्मिक है, परन्तु उसने इसे भुला दिया है। उसका इहलौकिक जीवन इस आत्मिक जीवन की योग्यता प्राप्त करने के लिए है। इस विस्मृत आध्यात्मिक जीवन की पुनः प्राप्ति ही उसके इहलौकिक जीवन के संघर्षों और उपलब्धियों की पूर्णता है। जब मनुष्य भगवत्-साक्षात्कार के पीछे लगता है और वह अपने को सभी छुद्र एवं विनाशशील पदार्थों से मुक्त बनाने के लिए संघर्षरत होता है, तभी उसके मानव-व्यक्तित्व का पूर्ण सौन्दर्य, उसके अस्तित्व का पूर्ण गाम्भीर्य तथा उसकी प्रकृति की गरिमा और महिमा प्रकट होती है।

संकल्प और इच्छा मात्र से ही परम लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। आत्मज्ञान की प्राप्ति एक महान् कार्य है। श्रुतियों ने इस संघर्ष को 'क्षुरस्य धारा' की संज्ञा दी है। साधक जब तक भगवत्-साक्षात्कार नहीं कर लेता, तब तक उसे निरन्तर एक बलिदान के पीछे दूसरा बलिदान देना होता है, एक कठोर परीक्षा के अनन्तर दूसरी कठोर परीक्षा से गुजरना होता है तथा एक समस्या के पश्चात् दूसरी समस्या का समाधान ढूँढना होता है। उत्कट आध्यात्मिक पिपासा, अक्षुण्ण उत्साह और गम्भीरता, मन की एकाग्रता तथा किसी भी मूल्य पर लक्ष्य तक पहुँचने का दृढ़ निश्चय – ये ही वे अस्त्र हैं जिनसे भगवान् का अनुसन्धान करने वाले व्यक्ति को सुसज्जित होना पड़ता है। तब निश्चय ही उसे आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति होगी और वह सन्त के रूप में विभासित होगा।

वीर साधक! शाश्वत जीवन, चिरन्तन ज्योति तथा अनन्त आनन्द के पथ पर दृढ़ता से अग्रसर हो जाओ। भगवान् की प्राप्ति के लिए आप जो संघर्ष कर रहे हैं, सर्वशक्तिमान् प्रभु उसमें आपका साथ दें!

योग संस्कृति का उत्थान

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मैं सन् 1956 से बिलासपुर आता रहा हूँ। गुरु पूर्णिमा के उपलक्ष्य में बिलासपुर के लोगों ने तीन दिन का योग सम्मेलन आयोजित किया है जिसमें हम आपके सामने कुछ चर्चा करने जा रहे हैं। यह चर्चा एक भूली हुई विरासत की है, जिसे भूले हैं आप, आपका साहित्य और आपकी संस्कृति। याद दिलाना हमारा काम है।

हम लोग संस्कृति को बौद्धिक स्तर की चीज नहीं मानते। कोई भी संस्कृति बौद्धिकता के आधार पर जाति, समाज और राष्ट्र को उपयोगिता नहीं दे सकती है। किन्तु हजारों साल पहले कुछ ऐसा हुआ कि आपके संत पुरुषों ने मनुष्यों के दुःख, शोक और उसकी सीमाओं को जाना और जानकर उनको दूर करने के कुछ रास्ते बतलाये। बहुत दिनों तक इस देश में वे रास्ते अपनाये जाते रहे थे। पर इतिहास में दुर्घटनाएँ होती हैं, देश और समय बदलता है। ऐसा ही हमारे देश में भी हुआ।

आज फिर वह विरासत मुझे याद आ रही है, जिसकी आज दुनिया को जरूरत है। उस याद को ताजा करने वाले लोग आज के वैज्ञानिकों की पीढ़ी के हैं, अन्वेषकों और अनुसंधानकर्त्ताओं की पीढ़ी के हैं। आश्चर्य की बात यह है कि जिन लोगों ने इस भूली हुई विद्या और विरासत पर अनुसंधान किया, वे हिन्दू नहीं थे, और शायद उनमें बहुत कम ऐसे थे जो आस्तिक थे। नास्तिक वैज्ञानिकों की परम्परा ने इस विरासत की हमें जो याद दिलायी है, उसी को याद दिलाने के लिए आज हम आपके सामने बैठे हुए हैं।

मैं किसी धर्म, मत या पंथ का प्रचारक नहीं हूँ, क्योंकि मैं आस्थावान् व्यक्ति नहीं हूँ। मुझे हर चीज में एक आलोचना दिखलाई देती है, परन्तु योग को मैंने वैज्ञानिक पृष्ठभूमि में स्वीकार किया है। उस वैज्ञानिक पृष्ठभूमि का आधार एक व्यक्ति और समाज है। मैं किसी आदर्शवाद को भी नहीं मानता, चाहे वह सीधा भौतिकवाद हो, चाहे किसी प्रकार की विचारधारा की परम्परा हो। मुझे आदर्शवाद मालूम नहीं है, क्योंकि मैं जीवन के साथ उलझा हुआ व्यक्ति हूँ और मन की गतियों के साथ लड़ने वाला आदमी रहा हूँ। दिन-पर-दिन लोगों से मिलता हूँ, तो उनकी मानसिक परेशानियाँ सामने आती हैं। उनकी बीमारियों

के बारे में सुनता हूँ, तो मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि अब हमें लोगों को विस्तार के साथ योग के विषय में समझाना चाहिए। यहाँ पर मैं आपको यह भी बतला दूँ कि मुझे चिकित्सा शास्त्र का काफी ज्ञान है और वह मेरा प्रिय विषय रहा है। जीवनभर मैंने चिकित्सा शास्त्र, मनोविज्ञान और दर्शनशास्त्र का धर्म से अधिक अध्ययन किया है। उसी दृष्टिकोण से दुनिया में योग पर अनुसंधान करने वाले अनुसंधानकर्त्ताओं के साथ मैं बहुत गहराई से सम्बद्ध हूँ।

आज दुनिया में, भारत और भारत के बाहर नौ सौ से अधिक अनुसंधान हो रहे हैं। उन सभी अनुसंधानों के साथ मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध है। किस प्रकार के अनुसंधान किये जा रहे हैं? इन अनुसंधानों का सम्बन्ध योग की उन क्रियाओं से है जिनका असर मनुष्य के भौतिक और मानसिक शरीर, मनुष्य के अनुभव और अस्तित्व पर पड़ता है। असर पड़ता भी है या नहीं, योग मिथ्या है या इसका वैज्ञानिक आधार है, इनका अध्ययन हो रहा है। मैं जानता हूँ कि इस देश में बहुत-से ऐसे लोग हैं, जो समझते हैं कि योग एक धर्म-परम्परा है। अगर आप ऐसा मानते हो, तो आप इतिहास को नहीं जानते, आपको दुबारा इतिहास पढ़ना पड़ेगा। बहुत-से लोग योग को इन्द्रजाल या काला जादू के समान समझने और समझाने की कोशिश करते हैं। इससे ऐसा हुआ है कि हमारे देश और दुनिया में बहुत-से लोग योग का फायदा नहीं उठा पा रहे हैं।

योग का अर्थ

योग का मतलब होता है, संतुलन। यही योग का वास्तविक मतलब है। योग की दिशा जो आज दुनिया के सामने प्रकट हो रही है, वह बहुत ही प्रभावशाली है। यहाँ बैठकर आप लोग इसका अनुमान नहीं लगा सकते हैं। इसने प्रायः हर क्षेत्र में प्रवेश किया है। इसने पागलखानों में प्रवेश किया, जहाँ यह सफल रहा है। जेलों में प्रवेश किया, वहाँ सफल रहा। बाल एवं किशोर अपराध सुधार गृहों में प्रवेश किया, सफल रहा। आदतों को छुड़ाने वाले जो सैनेटोरियम होते हैं, वहाँ भी इसे सफलता मिली है। इतना ही नहीं, आज के युग की दो बड़ी बीमारियाँ यदि किसी चिकित्सा पद्धति के नियंत्रण में हैं, तो वह है योग। यहाँ डॉक्टर लोग बैठे होंगे, बुरा नहीं मानेंगे, आपका और मेरा पेशा, आपकी और मेरी विद्या एक है। मगर सच बोलना पड़ता है; दो बहुत बड़ी बीमारियाँ आज उसी प्रकार सारी दुनिया को चपेट में ले रही हैं, जिस प्रकार हमारे देश में हैजा और चेचक का प्रकोप हुआ करता था। वे दो बीमारियाँ हैं – डिप्रेशन और सिज़ोफ्रेनिया। ये दोनों व्यापक बीमारियाँ आपके समाज की हैं, और हो सकता है कि आप लोगों में भी कई इनसे पीड़ित हों।

आधुनिक सभ्यता और समाज में हमलोग जिस तरह से चल रहे हैं, जिन सिद्धान्तों और दर्शनों को अपना रहे हैं, जिन द्वन्द्वों के बीच जी रहे हैं, उन सबसे या तो सिज़ोफ्रेनिया हो जाता है या डिप्रेशन। जितनी बीमारियाँ हैं, जैसे, मधुमेह, नींद नहीं आना, अपच, पेप्टिक अल्सर, इन सबको दो प्रमुख

समूहों में विभक्त करना पड़ेगा। इतना ही नहीं, इन दोनों बीमारियों के कारण आज सारा विश्व परेशान है और उसका असर विश्व की राजनीति, सामाजिक पद्धति और अर्थव्यवस्था पर भी पड़ रहा है। राजनीति किसको कहते हैं? अर्थव्यवस्था क्या है? यह आपके मन की स्थिति का प्रतीक है, प्रतिबिम्ब है। यह बात हमको समझनी पड़ेगी।

आज योग एक बड़ी शक्ति के रूप में दुनिया के हर कोने में उठ रहा है। इस शक्ति को कोई संस्कृति, धर्म या राजनैतिक प्रभाव दबा नहीं सकता है, क्योंकि यह व्यक्ति के साथ चल रहा है, समाज के साथ नहीं। बात बिलकुल छोटी है। चाहे आप हठयोग की बात लीजिए या भक्तियोग की, राजयोग की बात लीजिए या कुण्डलिनी योग की, योग की जितनी शाखाएँ हैं, वे मनुष्य के व्यक्तित्व से अलग-अलग सम्बन्ध रखती हैं। मनुष्य केवल शरीर नहीं है, वह केवल मन, भावना या आत्मा भी नहीं है। मनुष्य इन सबका संयोग है। जब हम मनुष्य जीवन की दुविधाओं और व्यापक पीड़ाओं को हल करना चाहते हैं, तब हमको न केवल शारीरिक स्तर पर, बल्कि सब स्तरों पर काम करना होता है।

मनुष्य की चेतना, उसका अचेतन प्रदेश, जिसके विषय में न तो मनोवैज्ञानिक जान पाये हैं और न स्वयं मनुष्य ही जान पाया है, जिस अवचेतन प्रदेश में मनुष्य के जीवन का पल-प्रतिपल का हर अनुभव, सुख और दुःख एक बीज की तरह दब जाता है, जमा होता जाता है, उस अचेतन के बारे में अगर सोचो, क्या वह मनुष्य नहीं है? क्या वह तुम नहीं हो? अगर नहीं हो, तो वह अवचेतन हमारे जीवन को कैसे प्रभावित करता है? एक बात सोचना कि जो अनुभव मुझको हुआ, वह कहाँ जाता है? निश्चित रूप से नष्ट नहीं होता है। दस-बीस साल के बाद या मृत्यु के पहले वे घटनाएँ, जो 40-50 साल पहले आपके जीवन में घटी थीं, याद आती हैं कि नहीं? मतलब फाइल बन्द नहीं हुई है, फाइल बरकरार है, लेकिन तुमने उसको देखा नहीं, तुमने उसको जाना नहीं। मनुष्य के पास वे आँखें नहीं हैं, वह बुद्धि नहीं है, वे आस्थाएँ नहीं हैं जिनके द्वारा वह चेतन के अलावा अचेतन और अवचेतन को देख सके। मनुष्य जीवन का यह पक्ष योग का मुख्य विषय है।

जब हम ध्यान की गहरी अवस्था में जाते हैं, तो कहाँ जाते हैं? आँख खोलकर रहते हो, तो कहाँ रहते हो? अभी आप कहाँ हैं? निद्रा में आप कहाँ चले जाते हैं? स्वप्नावस्था में कौन-सा स्वप्न आता है? कहाँ रहते हो? क्यों स्वप्न देखते हो? और जब ध्यान की अवस्था में आँखों को बंद करके एक

सिनेमा देखते हो, दूसरा बाइस्कोप देखते हो, तीसरी पिक्चर देखते हो, वह क्या है? कहाँ है, दिखता नहीं।

ये मनुष्य के जीवन की गहराइयाँ हैं और यही गहराई उसकी पूर्णता है, जिसको योग स्वीकार करता है। इसलिए मनुष्य को कोई तकलीफ, बीमारी, दुविधा या मानसिक द्वन्द्व होता है, तो हम मनुष्य के जीवन को पूरा देखने की कोशिश करते हैं। हमलोगों का विज्ञान केवल रोग का पता लगाता है, जैसे कि यह बीमारी 'इन्सुलिन' के न होने से हुई। इन्सुलिन पैंक्रियाज़ से पैदा होता है, जो शक्कर को कम करता है। यह विज्ञान गलत नहीं है, अपनी जगह ठीक है।

रोग का उद्गम

वास्तव में मनुष्य की बीमारी उसकी चेतना से पैदा होती है, उसकी प्रतिक्रियाओं से पैदा होती है। मनुष्य की बीमारी बहुत छोटे जहर से पैदा होती है। एक विचार आता है, एक हॉर्मोन का थोड़ा-सा रस निकलता है, वह खून में मिलता है और कैन्सर को उत्पन्न कर देता है। भय, चिन्ता, द्वेष हैं, इनका पता नहीं चलता, पर यही रोग के कारण हैं। इन रोगों के कारणों को जानने के लिए मनुष्य को अपने मानसिक जीवन को देखना पड़ेगा। डिप्रेशन का एक स्पष्ट उदाहरण देता हूँ।

एक अँग्रेज लड़का था, उन्नीस साल का, वह इंजीनियर था। उसको डिप्रेशन की बीमारी थी। दस बजे तक उसको डिप्रेशन रहता था। डिप्रेशन किसको कहते हैं? न पढ़ने को मन करता है, न बोलने में मन लगता है। न मिलने-जुलने का मन करता है, न अकेले रहने का मन करता है। न बैठने का मन करता है, न घूमने का। किसी चीज में मन नहीं लगता। केवल दस बजे तक उसे डिप्रेशन रहता और दस बजे के बाद वह ठीक हो जाता था। वह भारत आया हुआ था। एक दिन की बात है, वह एक मकान की तीसरी मंजिल पर खड़ा था। उसने देखा कि मकान के पीछे एक सूअर टट्टी खा रहा है। एक हिन्दुस्तानी के लिए सूअर का टट्टी खाना कोई बड़ी बात नहीं है, मगर एक अँग्रेज बच्चे के लिए सूअर का टट्टी खाना बहुत बड़ी बात है। उसे शॉक लगा, और जैसे ही उसको शॉक लगा उसको एक घटना याद आ गयी। बहुत छोटी-सी घटना।

जब वह आठ-दस साल का छोटा बच्चा था, तब मछली मारने जाता था। एक बार किसी काम के कारण एक सप्ताह तक वह मछली मारने के लिए नहीं गया। एक सप्ताह के बाद जब वह फिर मछली मारने गया तो उसने अपने उस डिब्बे को देखा जिसमे छोटे-छोटे कीड़े रखे थे। जब उसने डिब्बा खोला तो उन कीड़ों के पँख निकल आये थे। सब उसके मुँह की तरफ उड़कर आ गये। यही छोटी-सी घटना उसको याद आयी। उसके बाद उसका डिप्रेशन समाप्त हो गया। क्या आप विश्वास कर सकते हो कि उस डिप्रेशन का कोई शारीरिक कारण नहीं था! वह डिप्रेशन किसी गहरे अनुभव की प्रतिक्रिया भी नहीं थी। एक आठ-दस साल के बच्चे के मुँह पर केवल छोटे-छोटे पँख वाले कीड़े उड़कर आ जाते हैं। उसे इस रूप में एक अनुभव होता है। क्या यह डिप्रेशन का कारण हो सकता है?

योग कहता है कि मनुष्य का प्रत्येक अनुभव उसके दुःख और सुख का कारण हो सकता है। उसे उस अनुभव को बाहर निकालना होगा। इसके लिए योग में मन को एकाग्र करने की पद्धति है, चित्त को एकाग्र करने की पद्धति है। चित्त को एकाग्र करने की पद्धति में हम दो बातें बताते हैं। जब आप अपने चित्त को एकाग्र करने की कोशिश करते हैं, तो चित्त एकाग्र नहीं होता है। क्या होता है? उस समय हमारे मन में अनेक प्रकार के विचार उछलते रहते हैं, निकलते रहते हैं। अतः योगशास्त्र कहता है, उन्हें निकलने दो।

मन को एकाग्र करने का योग का प्राथमिक प्रयोजन यही है कि एकाग्रता के सिद्धांत से हमलोग अपने मस्तिष्क पर थोड़ा दबाव डालें। दबाव डालने

पर दिमाग में जो पुरानी घटनाएँ, पुरानी यादें, पुराने अनुभव होते हैं, वे फटाफट निकलते जाते हैं। वे घटनाएँ बचपन की हो सकती हैं, माँ की गोद की हो सकती हैं, युवावस्था की हो सकती हैं, मगर जो भी अनुभव जीवन में हुआ है, उसको एक बार जरूर व्यक्त करना चाहिए। यह सिद्धांत है। इस बात को आप लोग भूलें नहीं। जब मनुष्य किसी घटना के अनुभव को दुबारा प्रकट करता है, तब उसके रोग पर, तंत्रिकाओं पर, हॉर्मोनों पर, पाचन शक्ति पर अच्छा असर पड़ता है।

लोग बताते हैं कि ध्यान करता हूँ तो मुझको बड़ा हल्का लगता है। इसका वैज्ञानिक कारण समझा आपने? वैज्ञानिक आधार पर ध्यान का मतलब केवल चित्त को शून्य में समाहित करना नहीं है, बल्कि ध्यान का मतलब होता है चित्त को शून्य में समाहित करने का प्रयत्न करते हुए, अपने मन के अंदर के विचारों को धीरे-धीरे प्रकट करना। इसीलिए ध्यान के समय जब चित्त में एक बिन्दु को लेते हैं, तब मन इधर-उधर भागता है। देखो कहाँ जा रहा है, फिर एकाग्र करने की कोशिश करते हैं, फिर से मन इधर-उधर जाता है। फिर देखो किधर जाता है। जैसे-जैसे एकाग्रता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे मन के अंदर उथल-पुथल होने लगती है। उस उथल-पुथल में कई प्रकार के सपनों, अनुभवों, पुरानी स्मृतियों तथा घटनाओं की पुनरावृत्ति होती है। यह पुनरावृत्ति स्वस्थ मानसिक एवं शारीरिक जीवन के लिए आवश्यक है।

हमलोग इस बात को बतलाने की कोशिश कर रहे हैं कि मनुष्य के शरीर की जो बीमारियाँ हैं, वे कहीं दूसरी जगहों पर हुई हैं। वे दूसरी जगहें क्या हैं? वे मनुष्य के दूसरे आयाम हैं, जो भावनात्मक, मानसिक, आत्मिक, आध्यात्मिक कुछ भी हो सकते हैं। इसके लिए हम सबसे पहले जो योग शुरू कराते हैं, वह है हठयोग।

हठयोग का प्रयोजन

हठयोग का मतलब होता है – शरीर में दो शक्तियों के बीच संतुलन लाना। यह इसका साधारण अर्थ है। शरीर के अंदर दो शक्तियाँ कौन-सी हैं? एक है प्राण और दूसरा है मन। हम कौन हैं? प्राण और चेतना। चेतना है तभी आप मेरी बात समझ रहे हैं, मैं भी समझ रहा हूँ। समय का ज्ञान है, स्थान का ज्ञान है, विषय का ज्ञान है, वस्तु का ज्ञान है। प्राण है, तो कर्मेन्द्रियाँ चल रही हैं, किन्तु प्राण और मन में समन्वय होना चाहिए। यह समन्वय बिलकुल ठीक-

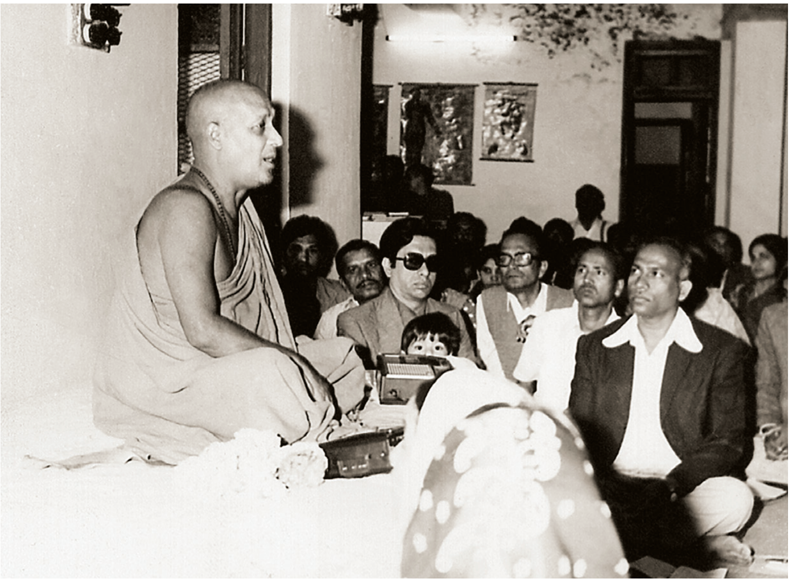

ठीक होना चाहिए। अगर प्राण और मन में समन्वय नहीं होगा, तो बीमारियाँ होंगी। मन बहुत सक्रिय हो और प्राण बिखरा हुआ हो, तो बीमारी होगी। जब मन शक्तिशाली हो और प्राण कमजोर हो, तो मानसिक बीमारियाँ होती हैं। उनको कहते हैं मनोकायिक रोग। जब प्राण प्रबल होता है और मन कमजोर होता है, तब कायिक-मानसिक बीमारियाँ होती हैं। एक बीमारी मन से पैदा होकर शरीर में आती है और दूसरी बीमारी शरीर से पैदा होकर मन में जाती है। इस तरह दो प्रकार की बीमारियाँ हुईं।

हठयोग में प्राण को पिंगला कहते हैं और मन को, अर्थात् चित्त को इड़ा कहते हैं। इड़ा नाड़ी बायें नासिका छिद्र से व्यक्त होती है और पिंगला दाहिने से, दोनों नासिका छिद्रों से श्वास आती है। हमलोगों ने इसका तापक्रम लिया है। बायीं नासिका में तापक्रम दाहिनी की अपेक्षा कम होता है। जब बायाँ स्वर चलता है, तब मस्तिष्क का दाहिना हिस्सा जाग्रत रहता है और जब दाहिना स्वर चलता है, तब मस्तिष्क का बायाँ हिस्सा जाग्रत रहता है। इस प्रकार हम लोगों का मस्तिष्क, उसकी कार्यशैली, उसकी शक्ति बदलती रहती है।

मूत्र मार्ग के बीच में एक छोटी-सी ग्रंथि होती है, जहाँ से इड़ा और पिंगला चलकर ऊपर रीढ़ के पीछे मेडुला ऑब्लौंगाटा तक जाती हैं और वहाँ दोनों मिलती हैं। इड़ा और पिंगला नाड़ियों को ठीक रखने के लिए नाड़ी शोधन

प्राणायाम करते हैं। नाड़ी का मतलब होता है प्रवाह। जिस प्रकार किसी तार के अंदर बिजली जाती है, इसको कहते हैं विद्युत प्रवाह, उसी प्रकार चेतना का प्रवाह होता है। इन प्रवाहों का नाम है इड़ा-पिंगला और ये दोनों प्रवाह सारे शरीर में व्याप्त हैं। शरीर का कोई भी अंग ऐसा नहीं है, जहाँ जीवन नहीं है। जहाँ विद्युत नहीं है वहाँ शक्ति नहीं है।

हठयोग के अभ्यास में सबसे पहले इड़ा और पिंगला नाड़ियों को आसन, प्राणायाम और शरीर को शुद्ध करने वाली छः क्रियाओं के द्वारा शुद्ध करते हैं। हठयोग की छः क्रियाओं से यह शरीर बिलकुल शुद्ध हो जाता है। कैसे शुद्ध हो जाता है? जिस प्रकार आप अपने बर्तन को माँजते हो, तो वह बिलकुल साफ हो जाता है, उसी प्रकार यह शरीर बिलकुल शुद्ध हो जाता है। आसन, प्राणायाम और हठयोग की क्रियाएँ योग का आधार हैं। इसके बारे में आपको और दो-तीन महत्त्वपूर्ण बातें समझाता हूँ। ये बातें मैं केवल पुराने शास्त्रों के आधार पर आपको नहीं बोल रहा हूँ।

दुनिया में 900 से अधिक अनुसंधान हो रहे हैं और उन सबके साथ मेरा सम्बन्ध है। मैं अभी दो बड़े अनुसंधानों में लगा हूँ। एक पश्चिम जर्मनी में हो रहा है। प्रयोग में यह देखा जा रहा है कि आसन करते समय शरीर के अंगों की क्या अवस्था होती है; इसका विवरण तैयार किया जा रहा है। मेडिकल विश्वविद्यालय बार्सिलोना में, योगनिद्रा के समय मस्तिष्क में क्या असर होता है, तंत्रिका तंत्र पर उसका क्या प्रभाव होता है, इस तरह का अनुसंधान हो रहा है। इसके अलावा मस्तिष्क पर, शरीर पर, हॉर्मोनों पर, अंतःस्रावी ग्रंथियों पर जितने भी अनुसंधान हो रहे हैं, उनके विषय में हमने काफी लिखा है। आप हमारी पुस्तकों को पढ़ेंगे तो आपको मालूम पड़ेगा कि दुनिया में योग के विषय पर जो अनुसंधान हो रहे हैं, वे इस बात की तरफ इशारा कर रहे हैं कि मनुष्य इन छोटी-छोटी क्रियाओं के द्वारा अपने जीवन को यदि आनन्दमय नहीं बना सकता, तो कम-से-कम सुखी तो जरूर बना सकता है।

इनमें सबसे सरल, सबसे सुगम और जल्दी प्राप्त होने वाली चीज है, आसन। आसनों को लोग शारीरिक व्यायाम कहते हैं, पर यह व्यायाम नहीं है। आसन का मतलब होता है स्थिति। जैसे, शलभासन टिड्डी की स्थिति है, भुजंगासन साँप की स्थिति, मयूरासन मोर की स्थिति, मत्स्यासन मछली की स्थिति है। जब आप अपने शरीर को किसी एक स्थिति में रखते हो, उसे उसी का आसन कहते हैं। आप अपने शरीर को हिलाते-डुलाते हो, चलाते

हो, उसको कहते हैं व्यायाम। व्यायामों और आसनों में मौलिक अन्तर यही है। मैं यहाँ पर किसी को बड़ा और किसी को छोटा बतलाने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ, मैं केवल उपचार के दृष्टिकोण से योग के विषय में बतलाता हूँ।

उदाहरण के लिए, मनुष्य का शरीर तनाव पर चलता है; अगर अभी आपके शरीर में तनाव नहीं होगा, तो आप बैठ नहीं सकेंगे, खड़े नहीं हो सकेंगे, लेट नहीं सकेंगे। आप कटे हुए पेड़ की तरह गिर जायेंगे। जब तनाव एक सीमा के ऊपर होता है, तब वह मस्तिष्क में चला जाता है और उच्च रक्तचाप इत्यादि रोगों को जन्म देता है। योग में कुछ आसन ऐसे हैं, जो इन तनावों को कम करते हैं, जैसे भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, मकरासन। कुछ आसन ऐसे हैं, जो शरीर के अन्दर अन्तःस्रावी ग्रंथियों को नियंत्रित करते हैं, जैसे सर्वांगासन। इसमें आप पैरों को उठाते हो, ठुड्डी को दबाते हो। यह थायरॉयड ग्रंथि को नियंत्रित करता है। ये अंतःस्रावी ग्रंथियाँ मनुष्य के तापक्रम को नियंत्रित करती हैं, उसके पाचन, चय-अपचय को नियंत्रित करती हैं। इतना ही नहीं, उसके भय, चिंता, उत्तेजना को भी नियंत्रित करती हैं। यह हठयोग का मत है, विज्ञान का मत है। एड्रिनल ग्रंथियाँ होती हैं, वे भय निवारण की प्रक्रिया में काम आती हैं। एक और ग्रंथि है, उसको हम लोग कहते हैं पीनियल ग्रंथि। यह रीढ़ की हड्डी के सबसे ऊपर स्थित होती है। योग में उस पीनियल ग्रंथि को आज्ञा चक्र कहते हैं। भगवान शंकर की तीसरी आँख आज्ञा चक्र की प्रतीक है। यह पीनियल ग्रंथि क्या है? यह मनुष्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथि है, जो पूरे शरीर को नियंत्रित करती है।

आपके लॉकर में यदि ताला लगा हुआ है, तो कोई कुछ नहीं कर सकता। लेकिन अगर आपके लॉकर का ताला खुला है, तो कोई भी पैसा उठा कर ले जायेगा। इसी प्रकार यह पीनियल ग्रंथि एक प्रकार का ताला है। जब तक पीनियल ग्रंथि स्वस्थ है, तब तक मनुष्य का यौन व्यक्तित्व उसके नियंत्रण में रहता है। जब पीनियल ग्रंथि का क्षय होने लगता है, तब मनुष्य के अंदर यौन विकार बढ़ जाता है। कितनी जटिल है यह समस्या। हम आज अपने जीवन की समस्याओं को केवल बौद्धिकता के द्वारा ठीक करने की कोशिश कर रहे हैं। बुद्धि मनुष्य के जीवन की समस्याओं का समाधान नहीं खोज सकती। यदि आप भावनाओं से समस्याओं का समाधान खोजेंगे, तो मैं सहमत हो जाऊँगा। बुद्धि के द्वारा आप अपने मन के अन्दर की किसी भी त्रुटि को दूर नहीं कर सकते। इसीलिए आज्ञा चक्र को हमलोग ध्यान में पहला विषय बनाते हैं।

पीनियल ग्रंथि आज्ञा चक्र है और पिट्युटरी, अर्थात् पीयूष ग्रंथि सहस्रार चक्र है। थायरॉयड ग्रंथि को हम लोग विशुद्धि चक्र बोलते हैं। इस प्रकार बहुत-सी ग्रन्थियाँ हैं। ये ग्रंथियाँ मनुष्य की भावनाओं को, उसके भय, वासनाओं, स्वप्नों और रोगों को प्रभावित करती हैं। क्या हमारे पास कोई ऐसी युक्ति है, जिससे हम इन ग्रंथियों पर नियंत्रण स्थापित कर सकें? केवल एक विद्या है, जिससे इन ग्रंथियों पर नियंत्रण स्थापित हो सकता है, उसका नाम है – कुण्डलिनी योग। कुण्डलिनी योग के द्वारा सभी अन्तःस्रावी ग्रंथियों का ही संतुलन नहीं होता, बल्कि ऐच्छिक और अनैच्छिक प्रणालियों का भी संतुलन होता है। हाथ को मैं हिला सकता हूँ, क्या हृदय को भी हिला सकते हो? हाँ, उसको भी नियंत्रित करने का तरीका है। हृदय को नियंत्रित किया जा सकता है, उसके अंगों की क्रियाओं को नियंत्रित किया जा सकता है। शरीर का कोई भी अंग अनैच्छिक नहीं हो सकता, बस अभ्यास करो।

प्राणायाम के द्वारा मस्तिष्क भी एक ऐच्छिक प्रणाली बन सकता है। कुण्डलिनी योग के द्वारा इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना को स्वेच्छा से नियंत्रित कर सकते हो। जब मनुष्य अपनी प्राणशक्ति को, चेतना को नीचे से ऊपर तक चढ़ाता है, श्वास लेते हुए चढ़ाता है, अभ्यास के द्वारा चढ़ाता है, ध्यान करके अथवा श्वास को रोककर चढ़ाता है, शीर्षासन के द्वारा चढ़ाता है, उड्डीयान बंध के द्वारा चढ़ाता है, तब वह शक्ति ब्रह्माण्ड में पहुँचती है। उस समय मनुष्य अपने सहस्रार चक्र, अर्थात् पीयूष ग्रंथि को नियंत्रित कर सकता है।

आप लोगों ने कितनी बार अखबारों में पढ़ा होगा कि कोई आदमी जमीन के अन्दर चला गया और उसे ऊपर से ढक दिया गया। लोगों ने जब देखा तो उसके हृदय ने काम करना बन्द कर दिया था। इसका मतलब यह हुआ कि मनुष्य के लिए हृदय की गति को रोक पाना संभव है। यदि हृदय की धड़कन रुक जाये, तो उसे कैसे चालू किया जा सकता है? हृदय को नियंत्रित करने वाला केन्द्र मस्तिष्क में है। अगर वहाँ तक तुम उसको नियंत्रित कर सकते हो, तब हृदय को जब चाहो रोक सकते हो और जब चाहो चालू कर सकते हो। यह ऐसी बात नहीं कि कोई बहुत बड़ा जीवनमुक्त आदमी या महात्मा ही कर सके; जो योग का अभ्यासी होगा, वह कर पायेगा।

हृदय को नियंत्रित करने का एक साधन है। कोई बोलता है चना खाओ, कोई बोलता है लहसुन खाओ, ये सब व्यर्थ की बातें हैं। दिल को नियंत्रित करना है, तो सबसे पहले मस्तिष्क की तंत्रिका तंत्र प्रणाली को ऐच्छिक

प्रणाली बनाओ और यदि उसको ऐच्छिक प्रणाली बनाना चाहते हो तो सबसे पहले प्राणायाम में निपुणता प्राप्त करो। प्राणायाम में अगर सफलता हासिल करनी है, तो बंधों का ज्ञान होना चाहिए। मूल बंध, जालंधर बंध और उड्डीयान बंध, इन तीनों बंधों का ज्ञान होना चाहिए। प्राणायाम और तीनों बंधों के द्वारा हम मस्तिष्क की क्रियाओं को ऐसे नियंत्रित करते हैं जैसे ड्राइवर गाड़ी के गीयर और ब्रेक को नियंत्रित करता है। इस प्रकार उसको ऐच्छिक प्रणाली बनाना पड़ता है।

योग का वास्तविक प्रयोजन है, मनुष्य को उसके व्यक्तित्व के अलग-अलग आयामों पर पूरा नियंत्रण प्रदान करना। आदमी मस्तिष्क को नियंत्रित नहीं कर पा रहा है। अनैच्छिक प्रणाली को तुम ऐच्छिक नहीं बना पा रहे हो, तो मन पर क्या नियंत्रण करोगे। मन नियंत्रित नहीं हुआ तो भावना पर कैसे नियंत्रण होगा, भावना पर नियंत्रण नहीं हुआ तो चेतना पर कैसे नियंत्रण होगा, चेतना पर नियंत्रण नहीं होगा तो आत्मा पर कैसे नियंत्रण होगा। इसीलिए हठयोग सबसे पहले नाड़ियों को नियंत्रित करने की बात कहता है।

नाड़ियाँ कितनी होती हैं, यह भी बतलाता हूँ। बिलासपुर में सब-स्टेशन से जो बिजली आती है, उसमें कितने तार लगे हैं, क्या उन्हें गिन सकते हो? शरीर में 72000 नाड़ियाँ हैं, जिनके द्वारा ये दोनों शक्तियाँ आपके कण-कण में, रग-रग में और रोम-रोम में प्रवाहित होती हैं। इसीलिए कहीं पर भी इलेल्ट्रिक ब्रेकडाउन नहीं होता, कोई रुकावट नहीं होती है। कभी-कभी एक तार में बिजली रहती है और दूसरे में नहीं रहती है, तो बिजली नहीं जलेगी। उसी तरह से कभी-कभी आपमें प्राणशक्ति तो बहुत रहती है, लेकिन चेतना बहुत कम रहती है। कभी-कभी चेतना बहुत ज्यादा हो जाती है, मगर प्राणशक्ति इतनी कम रहती है कि सबेरे दो-चार सिगरेट पीये बिना टट्टी नहीं होती। हम लोग इतने निर्बल हो गये हैं। हमको लगता है कि हमारी सभ्यता को सबसे पहले अगर किसी चीज की आवश्यकता है तो योग की।

योग – एक वैश्विक विरासत

अन्त में, मैं आपको बतला दूँ कि योग केवल विज्ञान और चिकित्सा नहीं है। योग एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक शक्ति है। मैं तो पूरी दुनिया में घूमता रहता हूँ। एक बार मैं साउथ अमेरिका में कोलोम्बिया के दक्षिणी प्रदेश में एक जंगल में पहुँचा। वहाँ मैंने पत्थर की प्रतिमाएँ देखीं, सब आसन-प्राणायाम की प्रतिमाएँ

Devi, Bhu-Devi
Satyananda
Padarpan
Peeth

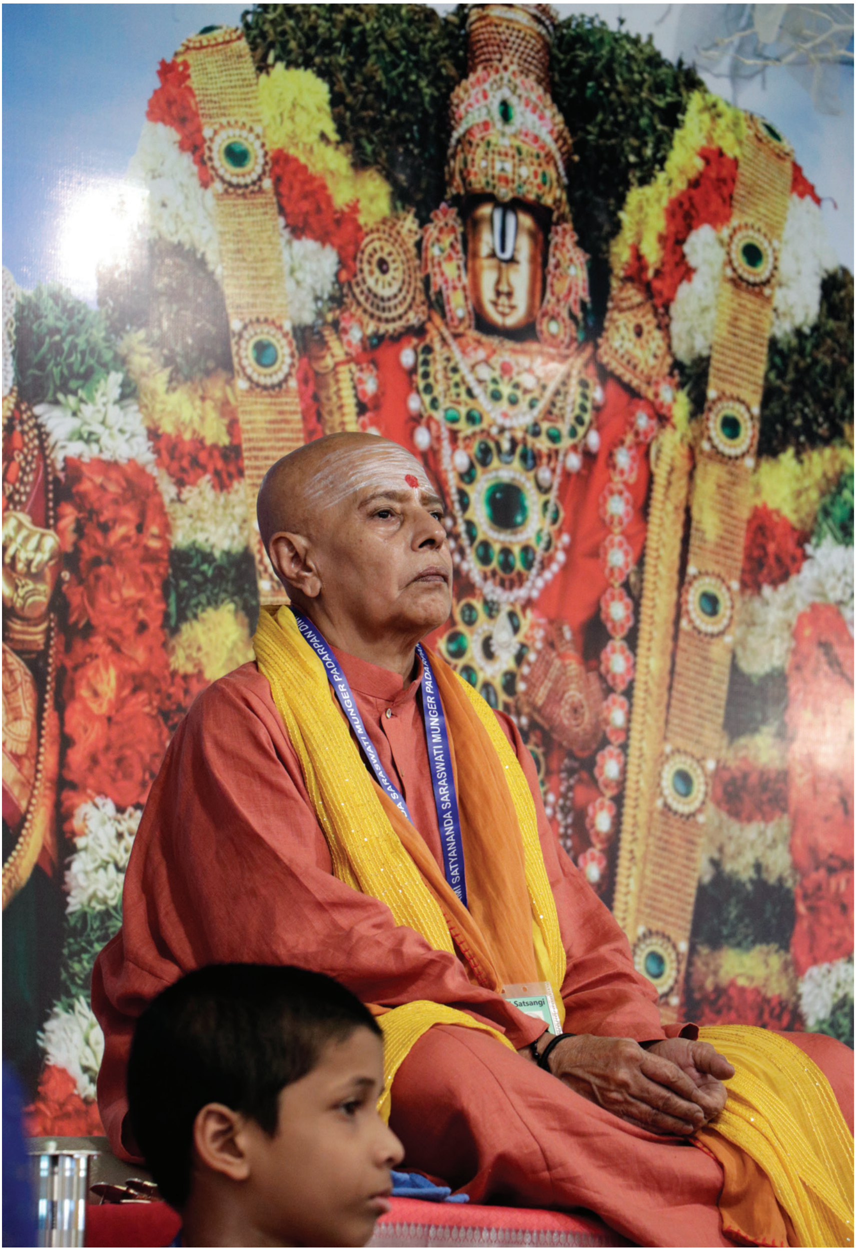
SATYANANDA SARASWATI MUNGER
Satsangi

Swami Niranjan

थीं, ये सब दक्षिण अमेरिका में कैसे पहुँचीं? नेति, धौति, विपरीतकरणी, उड्डीयान बंध वहाँ कैसे पहुँचे? मैं फ्राँस गया, अफगानिस्तान गया, लगता है कि सारी दुनिया के लोग योग से अच्छी तरह परिचित थे। योग हिन्दू संस्कृति नहीं है, योग मनुष्यों की संस्कृति है। हिन्दुस्तान में लोगों ने इसको संभालकर रखा है, क्योंकि यहाँ के लोग संस्कृति को संभालना जानते हैं, पर वे इसे उठाना नहीं जानते। किसी तरह से इन्होंने मानवता की एक बहुत बड़ी विरासत को संभालकर रखा, क्योंकि यह यहाँ का एक दर्शन है, एक तरीका है। अब यह योग की संस्कृति सारे संसार की संस्कृति को प्रभावित करेगी।

हमलोग बाहर के देशों में जाते हैं, वहाँ के पूरे-के-पूरे चर्च सहयोग करते हैं। रोमन कैथोलिक चर्च भी सहयोग देता है। उनके जितने भी वरिष्ठ पादरी और नन्स होते हैं, वे लिखते हैं कि स्वामी सत्यानन्द जी आ रहे हैं, उनसे चर्च की तरफ से सीखो। इसी प्रकार हम मध्य एशिया और अन्य बहुत-से देशों में जाते हैं। वहाँ सेमिनार करते हैं, लोगों को योग सिखलाते हैं। लोग बिलकुल इस बात को मानने लगे हैं कि जब तक योग का प्रायोगिक अभ्यास नहीं होगा, तब तक मनुष्य अपनी वास्तविकता को नहीं जान पायेगा।

योग में क्या विशेष है? पन्द्रह-बीस मिनट आसन, पाँच-दस मिनट प्राणायाम, दस मिनट एकाग्रता का अभ्यास और पन्द्रह, बीस या तीस मिनट

विश्राम, क्रियात्मक शिथिलीकरण। पेशीय शिथिलीकरण नहीं, वह तो सोकर होता है। बीस, पचीस या तीस मिनट के इस अभ्यास को आप दो या तीन बार में कीजिए। सबेरे आसन और प्राणायाम कीजिए, आधा घण्टा हो गया। शाम को आइये, अपना कपड़ा खोल लीजिये, हाथ-मुँह धोकर बिस्तर पर लेट जाइये, बीस मिनट योग निद्रा कीजिए, इसका नाम है शिथिलीकरण। उसके बाद उठिये, चाय पीजिए, नाश्ता कीजिए, खाना खाइए, जो भी काम करना हो, आप कर सकते हैं।

रात को सोने से पहले आखिरी काम, बिस्तर में जहाँ आप सोते हैं, ठीक उसी जगह पर चुपचाप बैठ जाइये और अपने लिए कोई एक बिन्दु बना लीजिए। शरीर में तीन मुख्य केन्द्र हैं – अनाहत, नासिकाग्र और भ्रूमध्य, तीनों में से किसी एक में अपने लिये कोई प्रतीक बना लीजिए, चाहे वह बिन्दु हो, ज्योति हो या मंत्र हो। पर वह आपके लिए निश्चित होना चाहिए, क्योंकि उसके बिना ध्यान नहीं होगा। निराकार का ध्यान नहीं होता है, भटक जाओगे। उस प्रतीक को उस जगह पर पाँच-दस मिनट देखो। मैं आपको बतला रहा हूँ, उसका केवल एक तरीका नहीं है। एकाग्रता के सवा लाख तरीके हैं, आपको उनमें से केवल एक चुनना है। चेतना को एकाग्र करने का रास्ता एक नहीं है, अनेक नहीं हैं, वे तो अनन्त हैं। आप शब्द से भी उसको एकाग्र कर सकते हो, बिन्दु से भी एकाग्र कर सकते हो, बस एक रास्ता पकड़ना है। दस मिनट तक उसको देखने की कोशिश करना। मन भागेगा, जाने दो उसको, उसको पुरानी बात याद आयेगी। समझना, अगर आप उसे दुबारा अनुभव नहीं करेंगे, तो वह आपके लिये मानसिक, भावनात्मक समस्या लायेगा। मियाँ-बीवी के झगड़े होंगे, परिवार के साथ, अफसर के साथ आपके जीवन में पचासों गलतियाँ होंगी। इसके लिए ध्यान करते जाओ और आती हुई भावनाओं को देखते जाओ।

यह योग का अभ्यास हमलोगों के जीवन में निश्चित रूप से होना चाहिए। मैंने जो बतलाया, यह मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं, एक भिन्न दृष्टिकोण है। यह जीवन जीने का एक छोटा-सा तरीका है, जिसे आप लोगों को अपने जीवन में समन्वित करना चाहिए। बस मैं केवल इतना कहने के लिए आपके यहाँ आया था।

– 9 जुलाई 1979, राघवेन्द्र सभा भवन, बिलासपुर

परिव्राजक के पदचिह्न

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अपने पूज्य गुरुदेव, श्री स्वामी शिवानंद जी से यह आदेश लेकर कि 'विश्व में नगर-नगर, डगर-डगर योग का प्रचार करो', स्वामी सत्यानंद जी ऋषिकेश आश्रम के बाहर चरण रखते हैं। उस समय जो संन्यासी उनको विदाई देने के लिए आए थे, उन्होंने स्वामी शिवानंद जी को कहते सुना कि 'मेरा वास्तविक उत्तराधिकारी जा रहा है, जो विश्व में शिव-ज्योति को प्रज्ज्वलित करेगा।'

स्वामी सत्यानंद जी 1943 में शिवानंद आश्रम पहुँचे, 1947 में संन्यास दीक्षा ग्रहण की और 1956 में स्वामी शिवानंद जी का आदेश लेकर वे बाहर निकलते हैं। 1943 से 1956, गुरु आश्रम में तेरह वर्ष व्यतीत हुये थे। वे अपने गुरुदेव, स्वामी शिवानंद जी का सान्निध्य, उनके आश्रम का त्याग नहीं करना चाहते थे। वे कहते थे, 'एक बार जब मैंने जीवन को समर्पित कर दिया है, तो फिर मुझे बाहर के समाज और संसार से क्या लेना-देना?' ऐसी थी उनकी मानसिकता।

सामान्य रूप से लोग आश्रम आते हैं, गुरु के सान्निध्य में रहते हैं, कहते हैं, 'मैंने आपको पूरा जीवन समर्पित किया है', पर बारह साल के बाद भाग जाते हैं यह कहते हुये कि 'मैंने बारह साल नियमानुसार गुरु के साथ बिताये हैं।' यहाँ विरोधाभास तो है ही। एक तरफ कहते हो कि मैंने जीवन समर्पित किया, और दूसरी तरफ कहते हो कि मैं बारह साल के बाद यहाँ से प्रस्थान कर जाऊँगा। निन्यानवे प्रतिशत लोग यही कहते हैं, लेकिन हमारे गुरुजी की मंशा आरंभ से ही स्पष्ट थी, क्योंकि उनके भीतर कोई भौतिक, सांसारिक प्रवृत्ति थी ही नहीं। जन्म से ही जिस व्यक्ति ने समाधि का अनुभव किया, वह क्या पुनः माया में लिप्त होने के लिए, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए गुरु की शरण का त्याग करेगा?

हमारे गुरुदेव के जीवन में यही दिखलाई देता है। वे गुरु आश्रम आए, और अपने आपको समर्पित कर दिया। गुरु का सान्निध्य छोड़कर वे कभी जाना नहीं चाहते थे, लेकिन स्वामी शिवानंद जी ने ही उन्हें कहा, 'तुमको अब बाहर जाना है। अगर तुम जैसा प्रतिभावान् व्यक्ति आश्रम में रहेगा तो बोनसाई बनकर रह जाएगा, वह कभी विशाल वटवृक्ष नहीं हो पाएगा। इसलिए तुमको

बाहर निकलना है और योग का प्रचार बीस साल तक करना है, उसके बाद तुम ब्रह्मांडीय कार्य में संलग्न हो जाओगे।' जब स्वामीजी को ऐसा आदेश मिलता है, तब 1956 में वे गुरु आश्रम का त्याग करते हैं।

परिव्राजक जीवन

उनके दूसरे अध्याय के पूर्ण होने में अभी सात साल बाकी हैं। सात सालों तक वे अफगानिस्तान से लेकर सिलोन तक, पाकिस्तान से लेकर बर्मा तक

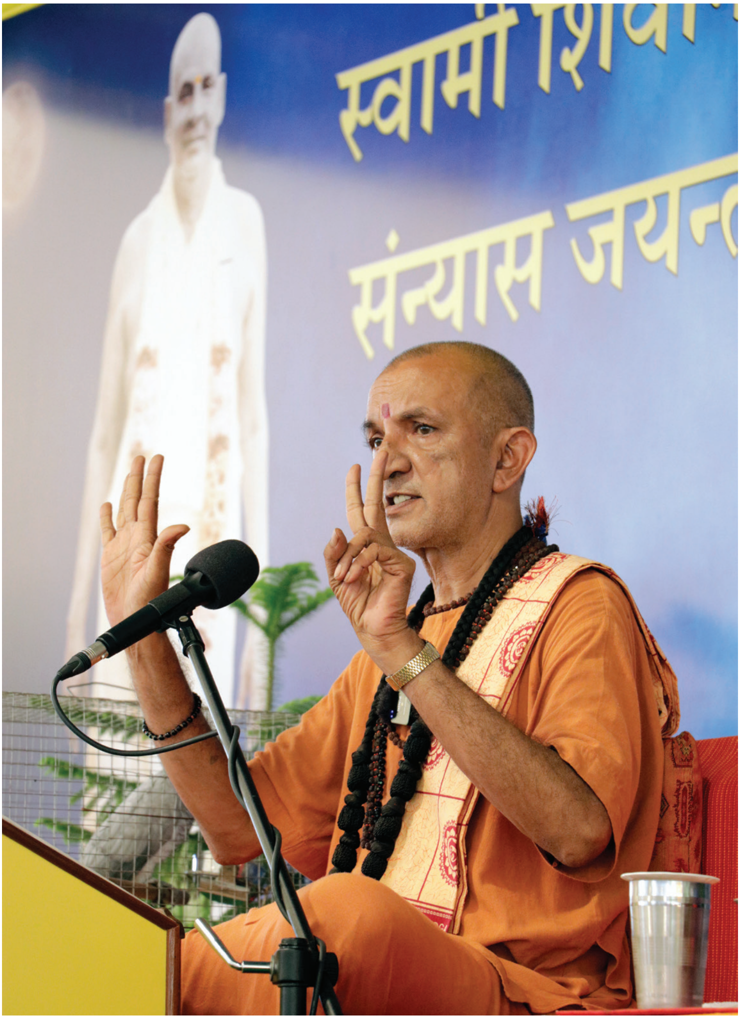

और भारत के सभी राज्यों का, नगरों-पंचायतों का भ्रमण करते हैं। उनके मन में हमेशा दो भाव रहते थे, तीसरा भाव नहीं था। यह बात मैं पूरे अधिकार के साथ कह सकता हूँ। उनके मन का पहला भाव था, 'जो गुरु ने मुझे आदेश दिया है, उसे पूरा करना है', और दूसरा भाव था, 'सभी के दिलों को अपने गुरु की शिक्षाओं से भर देना है।' यही दोनों भाव उनके जीवन के पथप्रदर्शक बने, उनके जीवन में समर्पण और सेवा के आधार बने।

जब वे आश्रम से निकलते हैं तो अन्य संन्यासियों की तरह वे गुरुजी के शिष्यों से कोई भी सहायता नहीं माँगते। उनके मन में हमेशा एक विचार रहता था कि मुझे तो अपने गुरु के 'कुल' की वृद्धि करनी है, उसका विघटन नहीं। इसलिए जो व्यक्ति पहले से ही गुरु 'कुल' से जुड़ा हुआ है, मुझे उससे कोई सहायता नहीं लेनी है, मुझे उसके पास नहीं जाना है, मुझे उससे मिलना नहीं है। मैं ऐसे लोगों के बीच जाऊँगा, जो गुरु को जानते नहीं हैं, जो गुरुकुल से जुड़े नहीं हैं और उनलोगों को मैं अपने गुरुकुल में जोड़ूँगा।

अगर हम उनके इस आदर्श की तुलना दूसरे संन्यासियों के साथ करें, जो यहाँ पर उपस्थित हैं और जो यहाँ से बाहर आचार्य पदों पर स्थापित हैं, तो हम यही देखते हैं कि जब भी कोई व्यक्ति आश्रम से बाहर जाता है तो आश्रम में आए सभी भक्तों का नाम, पता, नंबर नोट करके ले जाता है। फिर उनको चिट्ठी या फोन से संपर्क करके कहता है कि मेरे गुरु ने मुझे यह काम दिया है, मैं आपके यहाँ आ रहा हूँ, आप मेरी सहायता करो, हम दोनों मिलकर यह काम करेंगे। जो लोग ऐसा करते हैं, वे लोग अपना ग्रुप बना लेते हैं और गुरुकुल टूटता है। समाज में सभी लोग ऐसा ही काम करते हैं, इतिहास के पन्ने पढ़ लो। संतों और उनके शिष्यों के जीवन को देख लो, सब अपना-अपना चेला गुरु से ही हथियाने का प्रयास करते हैं। बुरा नहीं मानना, सही बात बोल रहा हूँ, लेकिन हमारे गुरुदेव का यही आदर्श था कि जो व्यक्ति मेरे गुरु से जुड़ चुका है, मुझे उसके पास नहीं जाना है, उससे सहायता नहीं लेनी है और जो व्यक्ति अनजान है, उसे मुझे अपने गुरुकुल से जोड़ना है। इसलिए वे कभी भी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिले जो उनके गुरु के शिष्य थे, कभी भी ऐसे स्थान में नहीं गए, जहाँ पर उनके गुरु के आश्रम थे, कहीं भी किसी के सामने अपना हाथ नहीं फैलाया।

प्रस्थान करते समय स्वामी शिवानंद जी ने उनको एक सौ आठ रुपये और दो धोतियाँ दी थीं। वे एक सौ आठ रुपये आज भी सुरक्षित रखे हैं बिहार योग

विद्यालय में। स्वामीजी कहते थे कि 'गुरुजी ने तो मेरे को एक सौ आठ रुपये दिये, लेकिन मेरी इच्छा है कि एक सौ आठ के बाद मैं शून्य, शून्य, शून्य, शून्य, शून्य जोड़ते जाऊँ और वह सब अपने गुरु को समर्पित कर दूँ', और ऐसा उन्होंने किया भी।

जब वे आश्रम से निकलते हैं तो उनका भ्रमण शुरू होता है और इस भ्रमणकाल में वे 1956 में राजनांदगाँव आते हैं, जो मध्यप्रदेश का एक छोटा-सा शहर था। वहाँ पर स्वामी सत्यव्रतानंद जी और स्वामी धर्मशक्ति जी से उनका संबंध और भी गहरा हो गया। इन दोनों से परिचय तो था ही जब वे 1953 में स्वामी शिवानंद जी के 'विश्व धर्म सम्मेलन' में भाग लेने गए थे। उसी समय हमारे माता-पिता ने भी दीक्षा के लिए आवेदन भरा था, लेकिन जब हमारी माताजी स्वामी सत्यानंद जी को देखती हैं तो कहती हैं कि 'मैं स्वामी शिवानंद जी से दीक्षा नहीं लूँगी।' स्वामी शिवानंद जी मुस्कुराते हैं, कहते हैं, 'तुम्हारे भाग्य में मेरे से दीक्षा लेना नहीं है, क्योंकि तुम्हारा गुरु खुद तुम्हारे घर आकर तुमको दीक्षा देगा!'

1956 में जब स्वामीजी राजनांदगाँव शहर में आते हैं तो स्वामी सत्यव्रतानंद जी से कहते हैं, 'गुरुदेव ने मुझे योग-प्रचार का कार्य दिया है और इस प्रचार को करने के लिए मैं दो चीजें चाहता हूँ। पहली चीज, एक संस्था जिससे लोग जुड़ सकें, और दूसरी चीज, साहित्य का प्रकाशन, जिसके द्वारा गुरु की योग शिक्षाओं का प्रसारण समाज में हो।' 1956 में ही 'अंतरराष्ट्रीय योग मित्र मंडल' संस्था की स्थापना राजनांदगाँव में होती है और 1964 तक योगविद्या प्रिंटिंग प्रेस का निर्माण होता है, जहाँ से पहली योगविद्या पत्रिका का प्रकाशन हुआ।

इस प्रकार एक संस्था बनी जो योग से जुड़े लोगों की मंडली थी और वे लोग गाँव-गाँव, नगर-नगर में रहते और सब मिलकर योग का काम करते। इसकी स्थापना के पश्चात् स्वामीजी पुनः अपने परिव्राजन पर निकल गये। साल में एक-दो बार राजनांदगाँव आना होता था, जहाँ पर अगले कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की जाती थी और कुछ दिन वहाँ रहकर स्वामीजी फिर निकल पड़ते थे।

अनेकों गाँवों में, अनेकों परिवारों के साथ वे रहे। ये धनी परिवार नहीं होते थे। कभी गाँव में किसी की झोंपड़ी में रहना होता था जहाँ एक कमरे में ही पाँच लोग सो रहे हैं, वहीं पर वे भी अपनी चादर बिछाकर सो जाते थे।

कोई अगर उनको पाँच-दस रुपये देता भी था तो कहते थे, 'मैं तो संन्यासी हूँ। मैं पैसा नहीं लूँगा, लेकिन अगर तुम देना चाहते हो तो राजनांदगाँव में स्वामी सत्यव्रतानंद को मनीऑर्डर भेज दो। इसका उपयोग पत्रिका के प्रकाशन में या योग के कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए किया जाएगा। अगर मुझे कुछ देना ही चाहते हो तो मेरे अगले स्टेशन के लिए बस या ट्रेन का एक टिकट काट दो।' इतना ही वे कहते थे। उनका झोला हमेशा खाली रहता था, नोट से भरा हुआ नहीं क्योंकि वे लेते ही नहीं थे।

डाकू का हृदय परिवर्तन

एक बार तो ऐसी घटना घटी कि फौज के एक मेजर ने, जो श्री स्वामीजी को जानता था और जिसका बड़ा भाई अपने क्षेत्र का कुख्यात डाकू था, सोचा कि मैं स्वामीजी को अपने गाँव भेजता हूँ, हो सकता है इनके वहाँ रहने से गाँव में कुछ परिवर्तन आ जाए, मेरे भाई के जीवन में भी कुछ सकारात्मक बदलाव आ जाए। उसने स्वामीजी को उस गाँव भेज दिया। स्वामीजी पहुँचे, घर का दरवाजा खटखटाया। शाम का समय था, एक नौकर ने दरवाजा खोला। स्वामीजी कहते हैं, 'इनके छोटे भाई ने मेरे को भेजा है, इनको खबर कर दो कि स्वामी सत्यानंद आए हैं।' बड़ा भाई कुख्यात, खूंखार डाकू था, भांग पीकर मस्त पड़े रहता था। नौकर से खबर पाकर कहता है, 'भेजो उसे, देखते हैं कौन साला आया है।'

स्वामीजी को अंदर बुलाया गया। उसने पूछा, 'कैसे आना हुआ? झोले में क्या है?' स्वामीजी ने धोती निकालकर दिखला दी, 'दो धोतियाँ हैं, और कुछ नहीं है।' 'कैसे आना हुआ?' 'आपके छोटे भाई ने मुझे भेजा है, गाँव में एक सप्ताह रहने के लिए।' 'क्या करोगे यहाँ पर?' 'थोड़ा भजन-कीर्तन करेंगे, सत्संग देंगे, योग सिखाएँगे।' 'यहाँ पर गाँववालों को इस सबके लिए समय नहीं है, सब मेरी ही सेवा में हमेशा व्यस्त रहते हैं।'

तब स्वामीजी कहते हैं, 'ठीक है, सेवक आपकी सेवा में रहें। मैं गाँव के बच्चों और महिलाओं के साथ बैठूँगा, उनके साथ गप लगाऊँगा।' डाकू ने कहा, 'देखो, छोटा भाई भेजा है, इसलिए तुमको रखता हूँ। नहीं तो तुमसे अभी यह धोती लेकर नंगा घर से निकाल दिया रहता। रह जाओ यहाँ पर', और बरामदे में एक जगह दे दी। स्वामीजी वहाँ पर हारमोनियम लेकर बैठ जाते थे और भजन गाना शुरू कर देते थे – 'शिवोऽहं शिवोऽहं' या 'अगड़ बम

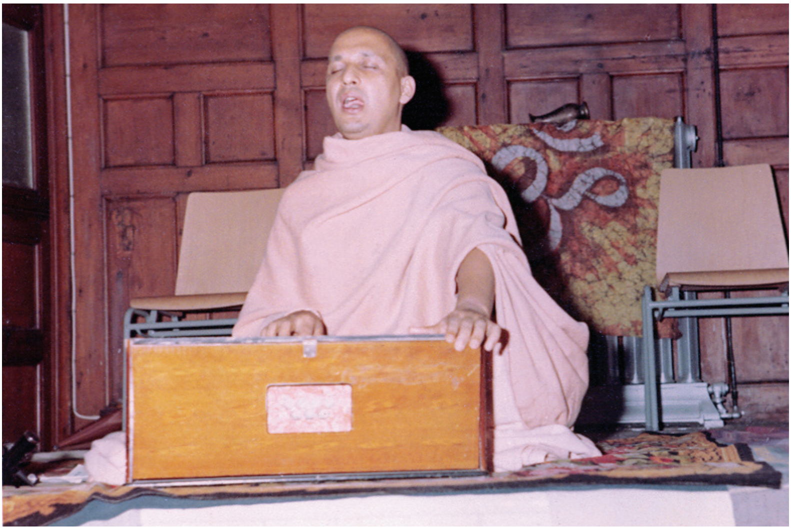

अगड़ बम बाजे डमरू' और उनके भजनों को सुनकर गाँव के बच्चे आ जाते थे, उनके साथ फिर मस्ती होती थी। अगले दिन बच्चे अपनी माँ से बोलते थे कि वहाँ पर एक ऐसे बाबाजी आए हैं जो बहुत अच्छा गाते हैं, हमलोगों को गाना सिखा रहे हैं। तो माताएँ भी आ जाती थीं। फिर माता अपने पति से बोलती थी, 'बाबाजी से मिले हो क्या? जाकर उनका आशीर्वाद ले लो।' इस प्रकार धीरे-धीरे लोग आने लगे और यह व्यक्ति भी अपनी चारपाई पर बैठकर, हुक्का पीते हुए स्वामीजी के भजनों और सत्संगों को सुना करता था।

सात दिन के बाद स्वामीजी ने कहा, 'सात दिन हो गये, अब मुझे जाना है।' डाकू कहता है, 'ठीक है, जा रहे हो तो जाओ, लेकिन मैं कुछ दूँगा तुमको।' उसने अपने झोले से सौ रुपये निकाले, जो आज के करीब दस-बीस हजार रुपये के बराबर होंगे। उसने स्वामीजी से कहा, 'यह पैसा ले लो। यहाँ पर तुमने जो सत्संग किया है, उसका यह पैसा है।' स्वामीजी ने कहा, 'नहीं, मैं तो पैसा नहीं लेता हूँ।' डाकू ने कहा, 'मैं बोल रहा हूँ न कि ले लो।' स्वामीजी ने कहा, 'नहीं, मैं तो नहीं लूँगा। यह तो मेरा काम ही नहीं है। मेरा काम है अपने गुरु की शिक्षाओं को प्रसारित करना। आपने जो सात दिन का अवसर प्रदान किया, उसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ और अब चलता हूँ।' उसने अपनी बंदूक उठायी और स्वामीजी की छाती से सटा दी, कहा, 'अगर नहीं लोगे तो तुमको अभी यहीं पर गोली मार दूँगा।' स्वामीजी बोले, 'देखो

भाई, मैं लेने वाला तो हूँ नहीं। गोली मारनी है तो मार दो। अगर चाहो तो ये सौ रुपये तुम इस पते पर मनीऑर्डर से भेज दो, उसका उपयोग हो जाएगा।' आदमी रोने लगा, बोला, 'जिंदगीभर मैंने लोगों को लूटा है, और लूटने के लिए अपनी बंदूक तानी है। पर आज जीवन में पहली बार कुछ देने के लिए मैंने बंदूक तानी है, तो भी यह नहीं ले रहा है।'

गाँव का कायाकल्प

घूमते-घूमते वे रायपुर के पास एक गाँव पहुँचे। वह बहुत पिछड़ा इलाका था। वहाँ न धर्मशाला थी, न पानी की व्यवस्था थी, न कुआँ था, बिजली का तो खैर सवाल ही नहीं, कोई चिकित्सक भी नहीं था। मतलब एकदम उपेक्षित गाँव था। वहाँ पर श्री स्वामीजी ने कुछ समय बिताया। वे तीन-चार महीने वहाँ रहे और गाँव के विकास के लिए खूब काम किया। गाँववालों के साथ मिलकर कुआँ खोद दिया, गाँववालों के साथ ईंटें बनाकर एक छोटी-सी धर्मशाला बनवा दी, दो-तीन कमरे का एक छोटा-सा स्कूल बना दिया, एक कमरा बनाकर उसमें क्लिनिक खोल दिया। ये तीन-चार महीने जो स्वामीजी ने वहाँ व्यतीत किये, उनमें गाँव का कायाकल्प हो गया और वह एक 'आदर्श ग्राम' के रूप में सामने आया। लोग इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने भारत के राष्ट्रपति, श्री राजेंद्र प्रसाद जी को चिट्ठी लिखकर बताया कि हमारा गाँव पहले ऐसा था और एक साधु के आने पर तीन-चार महीने में ही इतना परिवर्तन हो गया है और हम चाहते हैं कि आप हमारे गाँव पधारकर स्कूल, क्लिनिक और धर्मशाला का उद्घाटन करें, जिससे हमलोगों को प्रोत्साहन मिलेगा।

कुछ समय बाद राष्ट्रपति भवन से स्वीकृति भी आ गयी कि 'हाँ, आयेंगे। देखेंगे क्या काम हुआ है।' जब स्वीकृति आ गयी तो गाँववाले स्वामीजी के पास आकर कहते हैं कि हमलोगों ने राष्ट्रपति जी को पत्र लिखा था और उनसे स्वीकृति मिल गयी है, वे आ रहे हैं। स्वामीजी कहते हैं कि देखो, भारत के राष्ट्रपति आ रहे हैं, इसलिए तुमको मेहनत करनी होगी। उनका स्वागत कैसे करना है, पूरा विस्तार से उन्होंने बतलाया। स्वागत भाषण में क्या बोलना है, विदाई के समय क्या बोलना है, सब उन्होंने कागज पर लिख दिया। मंच कैसा होगा, व्यवस्था कैसी होगी, फूल कौन देगा, माला कौन पहनाएगा, कौन कहाँ बैठेगा – एक-एक चीज की बारीकी में जाकर उन्होंने सबको समझाया और उनसे बुलवा-बुलवा कर उनको तैयार किया। 'तुम बोलो, स्वागत कैसे

करोगे, पढ़ो!' कैसे पढ़ना, कहाँ पर रुकना, कहाँ पर बोलना, एक-एक चीज उन्होंने वैसे समझायी-सिखलायी जैसे बच्चों को सिखलाते हैं।

आगमन का समय समीप आ रहा था। सब सोच रहे थे कि स्वामीजी राष्ट्रपति जी के साथ मंच पर विराजमान होंगे। अगले दिन राष्ट्रपति जी आने वाले हैं, शाम तक पूरी व्यवस्था का निरीक्षण गुरुदेव ने किया और कहा कि अब सब कल के लिए तैयार हो जाओ, जल्दी सो जाओ। सब निश्चिंत होकर अपने-अपने घरों में सोने के लिए चले गए और उस रात को स्वामीजी ने अपना झोला उठाया और वहाँ से निकल गए।

दूसरे दिन जब लोग खोजते हैं, तो स्वामीजी नहीं थे वहाँ। राष्ट्रपति आते हैं, गाँव के भवनों का श्रीगणेश होता है, पर स्वामीजी कहीं नहीं हैं। कुछ महीनों बाद उस गाँव के एक व्यक्ति से स्वामीजी की मुलाकात होती है किसी दूसरे गाँव में। स्वामीजी उससे पूछते हैं, 'कैसा रहा कार्यक्रम?' वह बतलाता है, 'कार्यक्रम तो बहुत अच्छा था, लेकिन सबके मन में आपका अभाव खटक रहा था।' स्वामीजी ने कहा, 'मेरे रहने या न रहने से तो कोई मतलब है ही नहीं। जो मेरे गुरुदेव की शिक्षा थी, उसके आधार पर मैंने वहाँ काम किया। पानी के लिए, क्लिनिक के लिए, स्कूल के लिए काम किया, जो कुछ मेरे से संभव हो पाया मैंने किया। अब राष्ट्रपति वहाँ आये तो सरकार की निगाहें भी आपके गाँव पर आ गयीं, इसका अब निश्चित रूप से उत्तरोत्तर विकास होगा। इसलिए मेरी आवश्यकता नहीं थी, और मैं वहाँ से निकल गया।'

सरल जीवन

उनके जीवन का यह दृष्टान्त बतलाता है कि उन्होंने कभी भी अपने नाम, कीर्ति या यश के लिए काम नहीं किया। जहाँ पर उनको नाम, कीर्ति और यश की प्राप्ति की संभावना लगती, वे पहले ही वहाँ से निकल जाते। वे कहते थे, 'मैं तो अपने गुरु का काम कर रहा हूँ, मैं तो जनता की सेवा कर रहा हूँ। मेरा नाम होने से क्या फायदा, लोगों को काम से जुड़ना चाहिए, नाम से नहीं।' यही उनके जीवन का सिद्धांत रहा है, शुरू से अंत तक।

वे अनेक जनजातियों के साथ रहे, कोल-भील-किरात-मुसहरों के साथ रहे और उनके जैसा बनकर रहे। उन्होंने कभी यह नहीं कहा कि मैं संन्यासी हूँ, मेरे लिए ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। उन्होंने कभी नहीं कहा कि मुझे इस प्रकार का भोजन चाहिए। उन्होंने कभी नहीं कहा कि मुझे प्याज नहीं चाहिए

या लहसुन नहीं चाहिए, मैं तो ऐसा हूँ, मैं यह करता हूँ। नहीं, जो लोगों ने उन्हें प्रेम और श्रद्धा से अर्पित किया, उसको उन्होंने सहर्ष ग्रहण किया।

रामजी ने शबरी के झूठे बेर ग्रहण कर लिए। भले ही लक्ष्मण ने विरोध किया, पर रामजी ने विरोध नहीं किया, बल्कि कहा, 'यह तो प्रेम का भोजन है।' उसी प्रकार गुरुजी ने भी, चाहे वह देश हो या विदेश हो, कभी किसी को यह नहीं कहा कि 'मैं इस प्रकार का भोजन करता हूँ, इसलिए तुम मेरे लिए इस प्रकार का भोजन बनाओ।' उनको सूखी रोटी भी मिले तो नमक-तेल के साथ खा लेने में उनको आनंद आता था। उनको हलुआ-पूरी पकवान मिले, या सैंडविच मिले, उसको भी खाने में आनंद आता था। उन्होंने कभी नहीं कहा कि मुझे यह नहीं चाहिए अथवा मुझे यह चाहिए। वे सबके होकर रहते थे। परिवार के सदस्य के रूप में रहते थे, अतिथि के रूप में नहीं। अतिथि तो मांग रखता है, पहले से ही अपने भोजन का मेन्यू बनाकर भेज देता है। चाहे तुम सक्षम हो या न हो, उसे तो वही खाना है और बहाना बनाता है, '*अतिथि देवो भव* – मैं देवता हूँ, इसलिए तुम मेरी सेवा करो!'

स्वामीजी का सिद्धांत था कि 'मैं तुम्हारे परिवार का एक सदस्य हूँ। तुम जैसे रहते हो मैं भी वैसे ही रहता हूँ। तुम जो खाते हो, वैसा मैं भी खाता हूँ। हाँ, मेरी अपनी मर्यादा है, जिसका मैं पालन करता हूँ और मेरी मर्यादा क्या है, वह तुमको जानने की आवश्यकता नहीं है।' यह था उनके जीवन का आदर्श। वे सबके बनकर रहते थे, सबके हो जाते थे। चाहे वह आदिवासी हो या शहरी, धनी हो या कंगाल, पढ़ा-लिखा हो या गँवार, जिसके साथ भी वे रहते थे, उसका और उसके परिवार का उत्थान निश्चित होता था। आखिर वे कोई साधारण परिव्राजक तो थे नहीं, वे तो एक सिद्ध महापुरुष थे जिनकी तुलना किसी भी अवतार के साथ हम कर सकते हैं।

बिहार आगमन

अपनी यात्राओं के क्रम में उनका बिहार आना होता है। बिहार में सबसे पहले वे आते हैं छपरा। छपरा पॉलिटेक्निक कॉलेज की उस समय जो प्रिंसिपल थीं, वे स्वामीजी की प्रथम संन्यासी शिष्या बनीं। छपरा में ही निर्णय लिया गया कि 'योगा' और 'योगविद्या' पत्रिका का प्रकाशन राजनांदगाँव में शुरू होगा। अभी संस्था बनी नहीं है, लेकिन साहित्य का प्रकाशन हो रहा है और साहित्य के द्वारा योग की गंगा अब गाँवों, नगरों और शहरों में प्रवाहित होने लगी है।

स्वामीजी कभी भी आश्रम नहीं बनाना चाहते थे। छपरा के बाद वे भागलपुर आए। भागलपुर में शिव भवन का सहाय परिवार बहुत पुराना और प्रतिष्ठित परिवार है। वह परिवार उनके लिए आश्रम बनाने को तैयार था, लेकिन स्वामीजी ने कहा, 'नहीं, मुझे आश्रम नहीं चाहिए।'

अपनी यात्रा के दौरान उनका मुंगेर भी आना हुआ। एक बार स्वामीजी भागलपुर से ट्रेन में चढ़कर कलकत्ता जा रहे थे। उसी ट्रेन में मुंगेर के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे – श्री केदारनाथ गोयनका जी, जिनका परिचय स्वामीजी के साथ ट्रेन में होता है और वे कहते हैं, 'अवसर मिले तो आप मुंगेर आइये।' इसके पूर्व भी स्वामीजी मुंगेर आते थे, पहली बार वे 6 मई 1957 को आए थे, लेकिन गंगादर्शन के चबूतरे पर ही चुपचाप बैठकर अपना जप-ध्यान-साधना करते थे, उत्तरवाहिनी गंगा के किनारे घूमते थे और फिर वापस भागलपुर चले जाते थे। लेकिन जब श्री केदारनाथ गोयनका जी ने उनको मुंगेर आने का आमंत्रण दिया तो वे उनके यहाँ आते हैं। उस समय इस पादुका दर्शन परिसर का नाम था 'आनंद भवन', जहाँ पर श्री केदारनाथ गोयनका जी की कोठी थी। उस कोठी के बगल में एक छोटा कमरा था, जिसको 'गोल कोठी' कहते थे। वहाँ पर गुरुजी रहने लगे और वहाँ पर उन्होंने बहुत जप-साधना-अनुष्ठान किया और उनको बहुत-से आध्यात्मिक अनुभव भी हुए।

बीच-बीच में वे गंगादर्शन के चबूतरे पर बैठने भी जाते थे। एक दिन जब वे वहाँ पर बैठकर ध्यान कर रहे थे तो उनको लगा जैसे बहुत बड़ा भूकंप आया है और भूकंप के कारण चबूतरा दो भागों में टूट गया है। चबूतरे के टूटने से धरती के भीतर से एक श्वेत वस्त्र पहने ऋषि धरती से बाहर निकलते हैं। उनके सफेद बाल, जटा, लंबी दाढ़ी, ज्योतिर्मय स्वरूप था, पर चेहरा दिख नहीं रहा था। वे स्वामीजी को देखकर कहते हैं, 'योग भविष्य की संस्कृति है और यह स्थान एक दिन योग-प्रसारण का मुख्य केंद्र बनेगा।' दो दशक के बाद गंगादर्शन का निर्माण उस जगह पर होता है और आज यह विश्व में योग का सर्वश्रेष्ठ स्मारक है।

आनंद भवन में भी एक छोटा-सा चबूतरा रहता था, जहाँ पर लोग बैठकर गंगाजी को निहारा करते थे। बहुत बार स्वामीजी भी वहाँ बैठकर गंगाजी के समक्ष ध्यान किया करते थे। एक दिन जब वे ध्यान लगाकर बैठे थे तो ध्यान में उनको एक दृश्य दिखलाई देता है – एक चक्के वाली नौका, जो पहले जमाने में होती थी और जिसे 'फ्लाय व्हील बोट' बोलते थे। उस नाव पर स्वामी

शिवानंद जी गंगा पार जा रहे थे। पीठ इस तरफ है, मुँह उस तरफ है, लेकिन जब स्वामी शिवानंद जी गंगाजी के बीच में पहुँचते हैं, तो मुड़ते हैं, स्वामीजी को देखते हैं और अपना हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं। उसी समय नाव के चक्के से गंगाजी का जल स्वामीजी के शरीर पर आ पड़ता है। स्वामीजी की आँखें खुल गयीं। वे देखते हैं कि वास्तव में उनकी धोती गीली है, मानो किसी ने उनपर पानी का बौछार किया हो। वहाँ कोई नहीं था, लेकिन वस्त्र गीले थे और इससे उनको अंदाज लग गया कि अब मेरे गुरु शरीर का त्याग कर चुके हैं, समाधि प्राप्त कर लिए हैं।

बिहार योग विद्यालय की स्थापना

संन्यास में एक परंपरा है कि जब गुरु का प्रस्थान होता है तो जिस स्थान पर संन्यासी होता है, उसी को अपना स्थान बना लेता है। उस समय गुरुदेव मुंगेर में थे और मुंगेर की इन दो घटनाओं ने उनके आगे के कार्य को निश्चित कर दिया। उन्हें मालूम हो गया कि अब यहीं पर मुझे रहना है। उन्होंने केदारनाथ गोयनका जी से यह बात कही तो गोयनका जी कहते हैं, 'शिवालय के बगल में एक छोटी-सी जमीन है, जहाँ पर हम बर्फ बनाते हैं।' उस समय बर्फ की बड़ी-बड़ी सिल्लियाँ बनती थीं, जिन्हें फिर लोग अपने शहर या गाँव में ले जाकर और तोड़कर शर्बत जैसे ठण्ढे पेय बनाते थे। उस आइस फैक्ट्री में एक बारह फुट लम्बा और चौदह फुट चौड़ा कमरा था जो उस समय खाली पड़ा था। गोयनका जी ने कहा कि यह कमरा हम आपको देते हैं, यहाँ से आप अपना योग का कार्य आरंभ कीजिये। इस तरह एक बर्फ निर्माण कारखाने में बिहार योग विद्यालय की नींव पड़ती है। बाद में वहाँ एक हॉल बन गया, जहाँ पर करीब चालीस लोग अपना योगाभ्यास कर सकते थे, तीन कमरे बन गए। एक में स्वामीजी, और बाकी में उनके अतिथि रह सकते थे। एक मिट्टी की कुटिया भी बन गयी, जहाँ पर स्वामीजी दीक्षा दिया करते थे। इतना ही आश्रम था।

जब गोयनका जी ने कहा कि हम आपको यहाँ स्थान देते हैं, उस समय स्वामीजी के गुरु के सान्निध्य और परिव्राजक के रूप में भ्रमण के बीस साल समाप्त हो गए थे। उनके गुरु के योग-प्रचार के आदेश को पूरा करने का कार्य बिहार योग विद्यालय की स्थापना के साथ आरंभ होता है और वह बात है 1963 की।

1963 से 1983 तक श्री स्वामीजी योग के कार्य में रत हो गए। पहले लोग कहा करते थे कि 'योग तो साधु-संन्यासियों की चीज है, गृहस्थों से इसका क्या लेना-देना? हमें तो अपना पैसा कमाना है, परिवार की देखभाल करनी है।' उस समय इंडस्ट्री, स्टार्टअप वगैरह कुछ नहीं थे, धरती ही एकमात्र माध्यम थी उपज की। सब किसी तरह अपना जीवन निर्वाह किया करते थे। ऐसे में वे सोचते, 'योग से हमको क्या काम? वह तो भगवान का दर्शन चाहने वाले साधुओं की चीज है, हम गृहस्थों का उससे क्या लेना-देना?'

अपनी यात्राओं के दौरान श्री स्वामीजी ने देखा कि मनुष्य जीवन में कितनी समस्याएँ आती हैं। शारीरिक व्याधि, मानसिक संताप, हर प्रकार की परेशानी से व्यक्ति जूझते रहता है। इन संतापों, कष्टों और रोगों से निवृत्त होने के लिए क्या उपाय उपलब्ध है? तब उन्होंने शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शांति, भावनात्मक संतुलन और मानवीय प्रतिभा के विकास के लिए योग के कार्यक्रमों का निर्माण आरंभ किया। शुरू में चार-पाँच लोग ही आते थे क्लास में और जो भी आता था फोकट में क्लास करना चाहता था। लोग सोचते कि योग तो हमारी संस्कृति का अंग है, इसे सीखना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। कोई यह नहीं सोचता था कि साधु कैसे जीता है और कैसे हम इसकी थोड़ी बहुत मदद कर सकें।

1963 से लेकर 1970 तक करीब चार-पाँच शिष्य ही श्री स्वामीजी के साथ रहते थे, उनमें से हम एक थे। उस समय स्वामीजी के पास वस्त्र नहीं थे, केवल दो धोतियाँ थीं। एक पहनते थे, दूसरी धोकर सुखाते थे। ऊपर का बदन खाली रहता था, पुरानी तस्वीरों में आप देख सकते हैं। कभी कहीं से अंगोछा वगैरह मिल जाता था तो उसको काटकर हमलोग कौपीन बनाते थे।

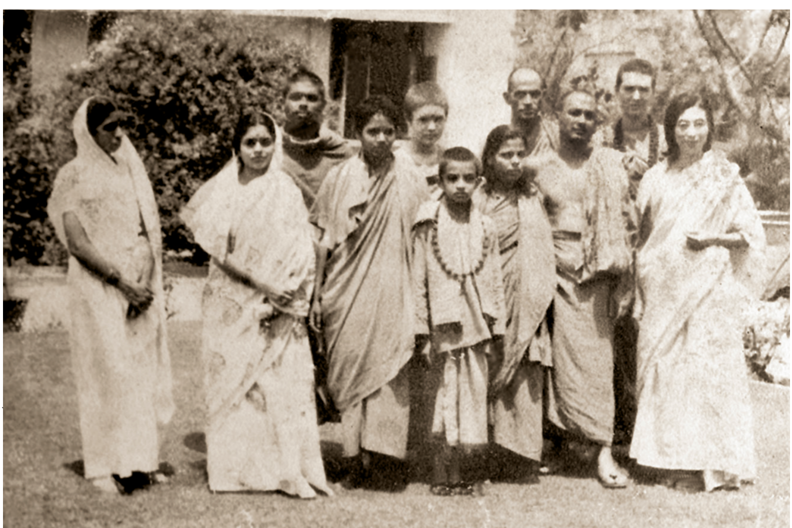

शरीर ढकने के लिए वस्त्र नहीं थे, खाने के लिए अन्न, सब्जी वगैरह भी नहीं थे और सोने के लिए स्थान भी नहीं था। जो थोड़े बहुत कमरे थे वहाँ तो अतिथि रहते थे, और हमलोग बाहर पेड़ के नीचे खटिया बिछाकर चादर डालकर सोया करते थे। रात को खूब मच्छर काटते थे। आश्रम की चहारदिवारी नहीं थी, लाल दरवाजा एकदम खाली स्थान था, जंगल जैसा था। रात को हल्ला होता था, 'भेड़िया आया' या 'भालू आया, जागो-जागो', और हमलोग डंडा लेकर एक साथ हो जाते थे और देखने लगते थे कि अंधेरे में कहाँ से क्या आ रहा है। फिर आवाज आती थी – 'भाग गया, भाग गया', तब फिर हमलोग बिस्तर में लौटकर सोते थे। इस प्रकार का शुरुआती जीवन रहा।

उस समय हमारे जैसे कुछ और युवा लोग आ गए, जिनमें एक थे स्वामी गोरखनाथ। हमलोग बोरा लेकर सब्जी बाज़ार जाते थे और सब्जियों के जो पत्ते लोग निकालकर सड़क पर फेंक देते थे, उन्हें हमलोग उठाकर लाते थे, सड़े हुए भाग को कैंची से काट देते थे और जो हरा भाग रहता था, उससे हमलोग सब्जी बनाते थे। नमक-मसाला कुछ नहीं, केवल निर्मल जल और उसमें तैरते हुये कुछ पत्ते, वही हमलोगों की सब्जी होती थी। कभी-कभी गोयनका जी के यहाँ से किसी पर्व के समय भोजन आ जाता था तो लगता था जैसे हम छप्पन भोग लगा रहे हैं! कभी थोड़ा-बहुत नमक मिल जाता था, तो नमक डालकर लगता था जैसे आज पहली बार भोजन कर रहे हैं, नहीं तो बेस्वाद सूप दिनभर, सप्ताहभर, महीनों पीते रहो। कभी कोई गेहूँ देता था, तो गेहूँ को भूनकर और कूटकर उसकी चाय बनाते थे, कॉफी जैसा स्वाद आता था। दलिया बनाते थे, जिसमें पानी ही ज्यादा रहता था और संभवतः एक मुट्ठी दलिया, लेकिन कम-से-कम मीठा पानी पीने को मिल जाता था।

इस प्रकार का संघर्षमय जीवन रहा, लेकिन संघर्ष कभी प्रतीत नहीं हुआ, क्योंकि गुरुजी के साथ रहते थे और उनकी सेवा करना, उनके कहे अनुसार जीना ही हमलोगों का लक्ष्य होता था। इसलिए मन में कभी ऐसा विचार नहीं आया कि 'कितना संघर्ष है, इससे अच्छा तो अपना घर ही था।' स्वामीजी हमलोगों के माता, पिता, सब कुछ थे। वे हमारी देखभाल करते थे, यहाँ तक कि रात को सुलाते भी थे। पहली बार राजनांदगाँव से अम्माजी ने मच्छरदानी भेजी तो बाँस के डंडे आपस में फँसाकर हमलोग मच्छरदानी लगाते थे। कमरा किसको कहते हैं, उसका अंदाज भी नहीं था। बारिश के दिनों में मच्छरदानी के ऊपर प्लास्टिक डाल देते थे और नीचे सोते थे। ऊपर में बारिश हो रही

है, बिस्तर गीला हो रहा है, लेकिन नींद आती थी, क्योंकि चेहरे पर पानी का छींटा नहीं पड़ रहा है। इस आश्रम के पूर्वार्द्ध का जीवन इस प्रकार का रहा।

स्वामीजी ने निर्णय लिया कि योग-प्रचार के लिए मुंगेर में और भारत के विभिन्न शहरों, जिलों और गाँवों में योग-सम्मेलन होंगे। पहला योग-सम्मेलन 1964 में हुआ था, जिस समय आश्रम की स्थापना की गयी थी और वह योग-सम्मेलन हुआ था गोयनका धर्मशाला के प्रांगण में। उस पहले सम्मेलन में दो सौ लोगों ने भाग लिया जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों से आए थे। उसके बाद प्रतिवर्ष जब सम्मेलन होने लगे तो संख्या भी बढ़ती गयी। अगले वर्ष छह सौ आए, फिर डेढ़ हजार आए, फिर तीन हजार आए और अब मुंगेर में सम्मेलन करते हैं तो चालीस-पचास हजार लोग यहाँ पर आ जाते हैं। इस प्रकार सम्मेलनों के माध्यम से योग का प्रचार आरंभ होता है। फिर जब मुंगेर में व्यवस्था और स्थान के अभाव की वजह से सम्मेलन संभव नहीं हो पाये तब फिर बाहर के क्षेत्रों में योग-सम्मेलन होने लगे। कभी गिरिडीह में हुआ, कभी पचम्बा में हुआ, कभी नौवागढ़ी में हुआ, कभी बरियारपुर में हुआ, भागलपुर में हुआ, कभी पटना में हुआ, कभी धनबाद में हुआ, कभी झरिया में हुआ, कभी नोवामुंडी में हुआ तो कभी जमशेदपुर में हुआ। केवल बिहार में ही नहीं, बल्कि गोंदिया, रायगढ़, रायपुर, राजनांदगाँव, दुर्ग, भिलाई, बम्बई, नागपुर, और कानपुर जैसे स्थानों में योग-सम्मेलनों के द्वारा योग-प्रचार का कार्य गुरुदेव ने आरंभ किया।

इस बीच उनको संकेत मिले कि योग को अब देश के बाहर भी फैलाना है। ऐसा संकेत मिलने पर वे सबसे पहले अपने कुछ सहयोगियों के साथ अपने गुरु के आश्रम गये। यह बात है 1968 की और उस यात्रा में हम भी शामिल हुए थे। ऋषिकेश में स्वामीजी अपने गुरु, स्वामी शिवानंद जी से देश के बाहर यात्रा करने की अनुमति लेते हैं। उनको अनुमति प्राप्त होती है और फिर उनकी पहली विश्व यात्रा भी अपने-ही-आप निश्चित हो जाती है। उससे फिर योग का काम मुंगेर क्षेत्र से निकलकर देशव्यापी और विश्वव्यापी होने लगा।

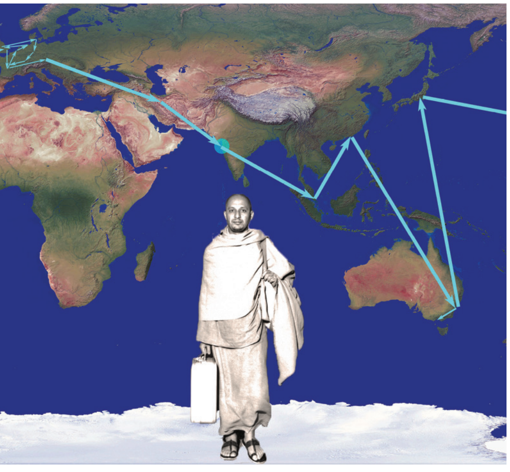

नकारात्मक भावनाओं का प्रबन्धन

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

सभी प्रकार की भावनाएँ ऊर्जा के विभिन्न रूप-रूपान्तर हैं। विविधता इस विश्व का आधार है। इस सृष्टि की उत्पत्ति एक नहीं, दो तत्त्वों से हुई है। यदि दिन है, तो रात भी है; यदि गर्मी है, तो सर्दी भी है। इसलिए यह कहना कि मैं जीवन में कभी किसी नकारात्मकता का अनुभव नहीं करूँगा, सच्चाई से अपना मुँह मोड़ना है।

बेशक, हम सभी ईर्ष्या, क्रोध एवं घृणा से मुक्त होना चाहते हैं और उदार, धीर एवं करुणामय बनना चाहते हैं। यह अपनी जगह ठीक भी है, क्योंकि हमें हमेशा अपने उत्थान के लिए प्रयत्न करना चाहिए, किन्तु हमें यह भी समझना चाहिए कि हमारी संरचना प्रकृति के तीन गुणों – सत्त्व, रजस् और तमस् के संयोजन से हुई है, जो हमारे स्वभाव और व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

जहाँ प्रेम है, वहाँ घृणा भी है। प्रत्येक स्थान पर हम इन द्वन्द्वों को पाएँगे, परन्तु गौर करने पर हम देखेंगे कि इनके स्तर में भिन्नता होती है। कुछ लोगों में दूसरों की अपेक्षा अधिक ईर्ष्या है, कुछ में दूसरों की अपेक्षा अधिक घृणा अथवा अपराध-बोध की भावना है। कुछ लोग करुणामय होते हैं, उनमें ईर्ष्या

की भावना नहीं के बराबर होती है। जन्म से ही उनमें इस दुर्गुण का अभाव था। राजसिक और तामसिक प्रवृत्तियाँ होते हुए भी उनमें सत्त्व गुण जाग्रत है। अपने पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण या अपनी मौलिक संरचना की वजह से वे अपने सत्त्वगुण को अभिव्यक्त कर पाते हैं।

मुझे नहीं लगता कि कोई ऐसा व्यक्ति भी होगा जिसमें ईर्ष्या या द्वेष की भावना बिल्कुल न हो। कुछ व्यक्ति इस बात को जानते हैं कि उनमें ईर्ष्या की भावना है और इसलिए उनका इस भावना पर बेहतर नियन्त्रण होता है। वे इस भावना को अपने विचारों, क्रिया-कलापों या निर्णय लेने की क्षमता पर हावी नहीं होने देते। लेकिन हममें से अधिकतर लोग ऐसा नहीं कर सकते। जैसे ही ईर्ष्या की भावना मन में आती है, हम प्रतिक्रिया करने लगते हैं और अपनी मानसिक स्पष्टता खो देते हैं। जब तक हम इस शरीर में हैं, हम पर तामसिक एवं राजसिक प्रभाव रहेंगे ही। पूर्व कर्मों और संस्कारों के अनुसार प्रभाव कम या अधिक होगा, परन्तु सबको इन प्रभावों का सामना करना पड़ता है। इन प्रभावों को सम्हालने के लिए इनका रूपान्तरण करना पड़ता है, क्योंकि देखा जाए तो ये केवल ऊर्जा के प्रवाह हैं।

ऊर्जा का प्रवाह अभी नकारात्मक दिशा में हो रहा है, लेकिन आप इसकी दिशा बदल सकते हैं अगर आप इसकी विधि जानते हैं। यदि ईर्ष्या ने मुझे जकड़ रखा है, तो निश्चित रूप से मेरे अनुभव का स्तर अच्छा नहीं होगा, क्योंकि मेरा दिलो-दिमाग उससे प्रभावित होगा। तन्त्र कहता है, 'देखो, इन सब बातों की चिन्ता मत करो। इनके कारण आत्म-हीनता या आत्म-ग्लानि अनुभव करने की जरूरत नहीं। ऐसा सब में होता है, कोई इससे मुक्त नहीं।' पहली चीज जो आपको समझनी और स्वीकार करनी है, वह यह कि ईर्ष्या अपने में बुरी चीज नहीं है। यदि आप में ईर्ष्या न हो तो आप कुछ पाने के लिए संघर्ष भी नहीं करेंगे। आप पुरुषार्थ और संघर्ष इसलिए करते हैं कि आप में ईर्ष्या है, नहीं तो आप एक पत्थर के ढेले की तरह निठल्ले पड़े रहते, कुछ नहीं करते।

ईर्ष्या-भावना का सकारात्मक उपयोग कीजिए। यदि मैं कागज पर एक रेखा खींचूँ और कहूँ, 'आपको इस रेखा के पार जाना है', तब आप क्या करोगे? आपके पास दो विकल्प हैं – या तो आप उस रेखा को मिटा दो अथवा आप उससे एक लम्बी रेखा खींचकर उसके पार चले जाओ। यदि आप किसी व्यक्ति से ईर्ष्या करते हैं, और उस भावना से प्रेरित होकर उससे बेहतर बनने की चेष्टा करते हैं तो यह सकारात्मक संघर्ष और उपलब्धि है। यही

ईर्ष्या का उद्देश्य है। इस संघर्ष से आपका विकास होता है, परन्तु दुर्भाग्यवश हम ईर्ष्या को इस प्रकार प्रयोग में नहीं लाते। ईर्ष्या से प्रेरित होकर हम दूसरे व्यक्ति का नुकसान करने का प्रयास करते हैं। हम यह नहीं जानते कि साथ ही ईर्ष्या हमारा नाश भी करती है। इसलिए यदि आपको किसी व्यक्ति से अथवा उसकी उपलब्धि से ईर्ष्या है तो उससे बेहतर करने का प्रयत्न करो। यह पहला विकल्प है।

अपने अवगुणों के कारण हीनता या कुण्ठा मत रखो। स्वीकार करो कि तुममें ईर्ष्या है। जिस क्षण तुम इस तथ्य को स्वीकार कर लेते हो, तुम आधी लड़ाई जीत लेते हो। बहुत-से लोग ईर्ष्या से ग्रस्त होने पर भी स्वीकार नहीं करते कि उनमें ईर्ष्या है। वे कहते हैं, 'मुझमें ईर्ष्या नहीं है, मुझमें क्रोध नहीं है, मुझमें लोभ नहीं है', परन्तु वे इन्हें दूसरे व्यक्ति में अवश्य देखते हैं।

इसलिए, पहली चीज है स्वीकार करना और इस बात का ज्ञान होना कि आपमें यह भावना है, क्योंकि जैसे ही आप अपने किसी दोष या कमी के प्रति

सजग बनते हैं, आप देखेंगे कि धीरे-धीरे यह अपने आप विलुप्त होती जाती है। सजगता का यही महत्त्व है।

योग में आपसे हमेशा कहा जाता है कि सब चीजों के साक्षी बनो। पहले दिन से आपका योग शिक्षक आप से कहता है, 'अपने शरीर के प्रति, अपने श्वास के प्रति, अपने विचारों के प्रति, सब चीजों के प्रति साक्षी बनिये।' यह तैयारी है इस सजगता, इस साक्षी-भाव को विकसित करने की। साक्षी-भाव से व्यक्ति के दृष्टिकोण में स्पष्टता और निष्पक्षता आती है। जब हम किसी समस्या को निष्पक्ष दृष्टिकोण से देखते हैं तब हमें उसका समाधान मिलता है। दुर्भाग्यवश हम अपनी समस्याओं के प्रति निष्पक्ष दृष्टिकोण नहीं अपनाते, बल्कि भावनाओं के वेग में बहकर अपनी स्पष्टता और तटस्थता खो देते हैं।

ऐसा नहीं कि सजग बनने से ईर्ष्या की भावना पूर्णतया लुप्त हो जाएगी, क्योंकि इसे लुप्त नहीं होना चाहिए। यदि यह लुप्त हो जाएगी तो आप पुनः सुस्त, ढीले और लापरवाह हो जाएँगे और किसी चीज के लिए प्रयास नहीं करेंगे। केवल एक सन्त अथवा प्रबुद्ध मनुष्य को, जो स्व-प्रेरित होता है, जिसे स्व-विकास के लिए किसी बाह्य प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं होती, उसे ही ईर्ष्या एवं लोभ का पूर्णतया निमूर्लन करने का अधिकार होता है। भावनाओं का एक उद्देश्य होता है और वह है आपका उत्थान और विकास। उनका उद्देश्य आपका विनाश करना नहीं है। लेकिन फिर भी आप अपनी भावनाओं के कारण पस्त हो जाते हैं, ध्वस्त हो जाते हैं, क्योंकि आप में सजगता नहीं है। आपको अपने जीवन के इस पहलू का विकास करते हुए भावनाओं का उपयोग अपने उत्थान के लिए करना है। तभी भावनाओं पर आपकी पकड़ मजबूत हो सकेगी।

योग के अंतर्गत बहुत-से अभ्यास आते हैं और ये सभी आपको सजगता सिखलाते हैं। इन अभ्यासों में श्वास की सजगता भावनात्मक परेशानियों को दूर करने के लिए एक बहुत अच्छा तरीका है, क्योंकि इससे मन तत्काल स्थिर और शान्त हो जाता है। ईर्ष्या जैसी भावनाओं पर विजय पाने के लिए अन्तर्मौन एक और अच्छा अभ्यास है। आप को अपने जीवन की प्रत्येक परिस्थिति और घटना के प्रयोजन को समझना होगा और यह जानना होगा कि किस प्रकार आप उसका उपयोग अपनी उन्नति हेतु कर सकते हैं। यह तभी सम्भव है जब आप अपने जीवन में सजगता तथा कुछ हद तक वैराग्य विकसित कर सकें।

श्रद्धा की जागृति

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

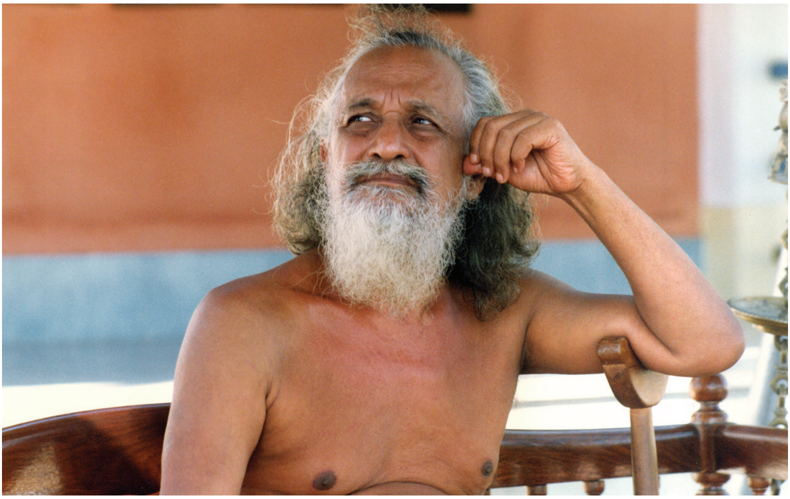

श्रद्धा मनुष्य की विशिष्ट सम्पदा है। मनुष्य के अस्तित्व के पीछे श्रद्धा मुख्य तत्त्व है। मनुष्य को जिन्दा रखने के लिये केवल भोजन और धन ही आवश्यक नहीं है। मनुष्य श्रद्धा के बल पर ही जीवित है। कभी-कभी श्रद्धा अव्यक्त रहती है। कभी-कभी व्यक्ति श्रद्धा का अन्त कर देता है तो कभी उसका संरक्षण करता है, और कभी-कभी उसे पुष्ट कर बढ़ाता है।

निर्मल लोगों में श्रद्धा होती है। इसके कुछ उदाहरण बाइबिल में मिलते हैं। एक बार ईसा मसीह की आज्ञा से पीटर समुद्र पर चलने लगे। परन्तु जैसे ही उन्हें शंका हुई, वे डूबने लगे। जल पर चल सकना श्रद्धा का चमत्कार था। जितनी देर उनकी श्रद्धा परिपूर्ण रही, वे पानी पर चले, पर जैसे ही श्रद्धा डगमगाई, वे डूबने लगे। इस प्रकार संत-महात्माओं के जीवन में श्रद्धा पर आधारित अनेक घटनाएँ देखने को मिलती हैं। यदि हम अपने भीतर निर्दोष श्रद्धा को बनाये रखें, उसे बुद्धि द्वारा भ्रष्ट न होने दें तो जीवन में ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे हम न कर सकें।

यदि आप हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या अन्य किसी धर्म के संत-महात्माओं के जीवन पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि वे आश्चर्यजनक रूप से श्रद्धावान् थे, भले

ही समाज के गरीब तबके से आए थे और प्रायः अनपढ़ थे। ईसा मसीह बढ़ई थे, रामकृष्ण परमहंस पचास रुपये मासिक वेतन पर दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर के पुजारी थे। स्वामी विवेकानन्द इतने गरीब थे कि कभी-कभी उन्हें भोजन के लिए भिक्षा माँगनी पड़ती थी। इन महापुरुषों की धन-दौलत क्या थी? क्या वह बुद्धि अथवा राजनैतिक सत्ता थी? नहीं। उनकी सम्पत्ति पवित्र श्रद्धा थी। यदि मुझमें श्रद्धा है तो मैं पहाड़ को भी हिला सकता हूँ, समुद्र को भी सुखा सकता हूँ। श्रद्धा देवत्व की चिंगारी है जो प्रत्येक व्यक्ति में जन्मजात रहती है।

मेरी मान्यता है कि ईश्वर और श्रद्धा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस क्षण आपमें श्रद्धा का उदय होता है, उसी क्षण ईश्वर का साक्षात्कार होता है। साक्षात्कार और श्रद्धा का उदय एक साथ घटित होता है। इस बात को अन्य ढंग से भी कह सकते हैं कि ईश्वर निराकार है, वह एक अनुभव है तथा लोकोत्तर अस्तित्व है। आपके चर्मचक्षु तथा सीमित मन उसे देख अथवा समझ नहीं सकते। आप अपनी सीमित चेतना द्वारा उसे प्राप्त नहीं कर सकते। परन्तु जब श्रद्धा जागती है तो ईश्वर-साक्षात्कार बिना किसी प्रयास के हो सकता है।

जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में देवत्व का अंश होता है, उसी प्रकार श्रद्धा भी बीज रूप में रहती है। आवश्यकता उसे विकसित और विस्फोटित करने की है। यदि आप प्यासे हैं और नदी के किनारे खड़े होकर पानी-पानी की रट लगायें, तो इससे आपकी प्यास नहीं बुझेगी। इसके लिए आपको नदी में उतरकर पानी पीना होगा। श्रद्धा के महत्त्व को मात्र समझ लेने से उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। उसके विस्फोट की प्रक्रिया बड़ी धीमी होती है। श्रद्धा का प्रारम्भ गुरु से और अन्त ईश्वर में होता है। गुरु एक मनुष्य हैं, वे भौतिक शरीर में एक महान् आत्मा होते हैं। जब आप श्रद्धा को बढ़ाना चाहते हैं तो वह आँखों से दिखने वाले किसी स्वरूप के आसपास ही पनप सकती है। यही कारण है कि श्रद्धा की यात्रा गुरु अथवा सन्त-महात्मा से प्रारम्भ होती है। थर्मामीटर के पारे की तरह एकाएक श्रद्धा विकसित नहीं हो सकती।

यदि आप अपने बच्चे को उच्च शिक्षा देना चाहते हैं तो क्या सर्वप्रथम आप उसे विश्वविद्यालय में दाखिला दिलायेंगे? नहीं। सर्वप्रथम आप उसे प्राइमरी स्कूल की प्रारम्भिक कक्षा में भर्ती करते हैं। फिर वह बच्चा प्रतिवर्ष परीक्षाएँ पास करता हुआ स्कूल, कॉलेज तथा अन्त में विश्वविद्यालय तक पहुँचता है। इसी प्रकार श्रद्धा की यात्रा गुरु से प्रारम्भ होकर ईश्वर में समाप्त होती है।

बुद्धि श्रद्धा की सबसे बड़ी दुश्मन है। मैं तो उसे श्रद्धा के लिए विष कहता हूँ। यही कारण है कि शास्त्र कहता है, 'बालवत् बनो।' वह बचकानी हरकतें करने की सलाह नहीं देता, बालवत् का अर्थ है, शिशु की पवित्रता, योगी का ज्ञान और दयावान् की उदारता।

मेरा जीवन और मिशन, दोनों श्रद्धा से प्रेरित हैं। मुझे स्वयं में, लोगों में और मानवता के भविष्य में श्रद्धा है। यदि यह सही न उतरे तब भी मुझे चिन्ता नहीं। मैं हर एक कार्य को केवल बुद्धि से करने में विश्वास नहीं रखता। मैं अपने चालीस-पैंतालीस वर्षों के अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूँ कि जीवन तथा मानवता की समस्याओं को केवल बौद्धिक उपायों से हल करने का प्रयास निरर्थक है।

अन्त में मैं यही कहना चाहूँगा कि श्रद्धा के शब्दकोश में 'असंभव' नामक कोई शब्द नहीं है। श्रद्धा और आत्मविश्वास के आधार पर कुछ भी असंभव नहीं है। श्रद्धा के द्वारा असाध्य बीमारी दूर की जा सकती है, अपने बुरे-से-बुरे स्वभाव को रातों-रात बदला जा सकता है। भले ही जीवन में आपके साधन कितने ही सीमित क्यों न हों, श्रद्धा की उपलब्धि होते ही आप आत्म-साक्षात्कार जैसी दुर्लभ गति प्राप्त कर सकते हैं। अब आप ही बताइए कि जब आपके पास श्रद्धा जैसी निधि हो तो फिर आपके लिए क्या असंभव हो सकता है?

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान किसी भी निम्नलिखित लिंक पर क्लिक करके दिया जा सकता है।

SB Collect Online **HDFC Online**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

बिहर योग विद्यालय का इतिहास

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 38, ISBN: 978-93-81620-67-0

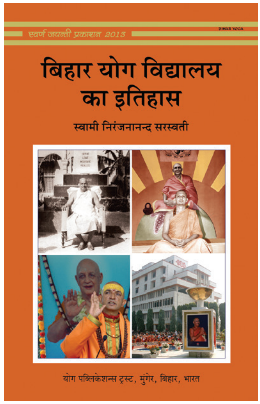

इस पुस्तक में स्वामी निरंजनानन्द जी ने बिहार योग विद्यालय के इतिहास का विहंगम चित्र प्रस्तुत किया है। स्वामीजी ने न केवल उन घटनाक्रमों का निरूपण किया है जिन्होंने संस्था का विकास-मार्ग प्रशस्त किया, बल्कि इस संस्था के निदेशक सिद्धांतों और विचारधाराओं पर भी प्रकाश डाला है। यह पुस्तक उन सभी योगप्रेमियों के लिए है जो योग के इस बृहत् स्मारक के इतिहास को जानने में रुचि रखते हैं।

उपलब्ध

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 9162783904, 9835892831 या **www.satyamyogaprasad.net** वेबसाइट देखें।

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

ISSN 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2026

योगपीठ कार्यक्रम

मई 6	*मुंगेर पदार्पण दिवस*
नवम्बर 19–22	*पद्म जयन्ती – योगनिद्रा संगोष्ठी*
दिसम्बर 27–31	*पद्म जयन्ती – यौगिक जीवनशैली महोत्सव*
प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

सितम्बर 28–अक्टूबर 6	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 11–19	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 25–नवम्बर 2	*क्रिया योग एवं तत्त्व शुद्धि प्रशिक्षण*
अक्टूबर 2026–अक्टूबर 2027	*संन्यास जीवनशैली अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर–दिसम्बर	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें